सुलभ साहित्य-माला

गाँवों की समस्याएँ

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

सुलभ साहित्य-माला

गाँवों की समस्याएँ

लेखक

शंकरसहाय सक्सेना एम० ए० एम० कॉम

अर्थशास्त्र-अध्यापक--बरेली कालेज, बरेली

तथा

प्रो० प्रेमनारायण माथुर एम० ए० एम० कॉम

राजस्थान कन्या विद्यालय--वनस्थली (जयपूर)

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

द्वितीय बार] १९४६ [मूल्य १)

भूमिका

आज भारतवर्ष में ग्राम-सुधार का बहुत शोर है और पिछले कुछ वर्षों से केवल सरकार ही नहीं हमारे राजनैतिक तथा सामाजिक नेताओं का भी ध्यान उपेक्षित ग्रामों की ओर गया है। यह देश के लिये शुभ लक्षण ही समझना चाहिए कि सदियों से उपेक्षित गाँवो के दिन भी फिरे हैं। परन्तु लेखकों की यह धारणा है कि बहुत से उत्साही कार्यकर्ता गाँवों की समस्याओं को समझते ही नही। बहुत सा परिश्रम, उत्साह और धन व्यर्थ नष्ट हो रहा है क्योंकि गाँवों की समस्याओ का बिना अध्ययन किए ही बहु-संख्यक कार्यकर्ता ग्राम-सुधार आन्दोलन में जुट पड़े हैं। पिछले दिनों में ग्राम-सुधार पर हिन्दी में कुछ पुस्तकें निकली है किन्तु जहाँ तक लेखको को ज्ञात है किसी भी विद्वान लेखक ने आर्थिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन नहीं किया।

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते हम लोगों की यह इच्छा थी कि हिन्दी में गांवो की समस्याओं पर एक पुस्तक लिखी जाये। गांवों की समस्याएं इतनी अधिक हैं और वे इतनी उलझी हुई हैं कि उनमें से हर एक पर एक एक पुस्तक लिखना ही उचित था। किन्तु हिन्दी के पाठकों की रुचि और प्रकाशन की समस्या पर विचार करते हुए एक पुस्तक में ही सब मुख्य मुख्य समस्याओं पर विचार करना आवश्यक समझा गया। इस कारण पुस्तक में कुछ बातें छूट गई हैं। फिर भी जहाँ तक हो सका

मुख्य मुख्य समस्याओं पर ज्ञातव्य बातों को लिख देने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक कैसी है इसका निर्णय तो विद्वान पाठक ही कर सकते हैं, हमने तो केवल इस बात का प्रयत्न किया है कि हिन्दी के पाठक गांवों की भिन्न भिन्न समस्याओं को समझ सकें। यदि यह पुस्तक पाठकों का गांवों की समस्याओं के सम्बन्ध में ठीक दृष्टिकोण बनाने में सहायक हुई तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

शंकरसहाय सक्सेना
प्रेमनारायण माथुर

दो शब्द

देश की आर्थिक उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि हमारे असंख्य गाँवों तथा ग्रामीणों की समस्या सुलझाई जाये और उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति ऊँची हो। इस जटिल समस्या को सुलझाने में देश के नेता तथा सरकार दोनों ही प्रयत्न-शील हैं। पुस्तक में इसी समस्या पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। दोनो विद्वान लेखक ग्राम्य-समस्या के सुलझे हुए विद्वान हैं और इसका अध्ययन भी सुलझे हुए दृष्टिकोण से किया है। विद्यार्थी तथा साधारण पठित जनता के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। हमे आशा है कि पाठकों को इस समस्या के सुल-झाने में एक सुन्दर दृष्टिकोण से विचार करने का उन्हें अवसर भी मिलेगा। पुस्तक की भाषा सरल है, इससे यह और अधिक उपयोगी हो गई है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
? नवम्बर १९४१

विनीत
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य-मंत्री

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

गांवों की ओर

मनुष्य अपनी रोटी का प्रश्न दो तरह से हल करता है। एक यह कि दूसरों की सम्पत्ति को लूट कर या अपने किसी सम्बंधी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन कर। दूसरे भिन्न भिन्न उद्योग धन्धों के द्वारा सम्पत्ति का उत्पादन करके अथवा किसी पेशे के द्वारा। यदि लूट मार और उत्तराधिकार की बात छोड़ दें तो अन्य धंधों और पेशों मे खेती ही एक ऐसा धंधा है जो सामाजिक ज्ञान पर निर्भर न होकर प्रकृति-सम्बंधी ज्ञान तथा जानकारी पर निर्भर है। कारखानों, व्यापार तथा अन्य पेशों में सफलता प्राप्त करने का रहस्य इसमे है कि उनमें लगा हुआ मनुष्य अन्य मनुष्यों की आवश्यकताओं का अध्ययन करे और उनको प्रसन्न रक्खे। व्यापारी को अपने ग्राहकों को प्रसन्न रखना पड़ता है, एक डाक्टर और वकील को अपने मरीज़ों और मुवक्किलों को ख़ुश रखने की चिन्ता रहती है और व्यवसायियों को अपने व्यवसाय की सफलता के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे दूसरों से सम्बंध बनाये रक्खे। किन्तु किसान केवल प्रकृति पर निर्भर रहता है। यही कारण है कि खेती करनेवालों को वह शिष्टाचार नहीं आते जो व्यापारियों तथा अन्यपेशेवालों को आते हैं। क्योंकि इन लोगों को दूसरों को प्रसन्न करके उनसे अपनी रोटी प्राप्त करनी पड़ती है यदि वे लोग अपनी बातचीत और व्यवहार से दूसरो को प्रसन्न नहीं रख सकते तो वे जीवन में सफल भी नहीं

हो सकते। किन्तु किसान को ड्राइंग रूम के शिष्टाचारो की आवश्यकता ही नही पड़ती, क्योंकि वह अपने निर्वाह के लिये दूसरों पर निर्भर नही रहता।

खेती की एक और भी विशेषता है। जिसके कारण किसान अधिक स्वतंत्र रहता है। खेती से किसान अपनी आवश्यकताओं की अधिकांश वस्तुएँ उत्पन्न कर लेता है इस कारण वह राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यापारिक परिवर्तनों से इतना प्रभावित नहीं होता, जितना अन्य धंधो और पेशों में लगे हुए लोग। एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिये, कि खेती ही एक ऐसा धंधा है कि जो घर से पृथक नहीं जा सकता। खेती की सफलता के लिये गृह अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। जिस प्रकार रेलवे के लिये वर्कशाप आवश्यक है उसी प्रकार खेती के लिये गृह आवश्यक है। खेती की सफलता के लिये गृह और खेत समीप ही होने चाहिए। किन्तु अन्य धंधो और पेशो मे काम करने तथा रहने के स्थानों का सामीप्य आवश्यक नहीं है। और न उनका कोई घनिष्ट सम्बन्ध ही है। यही कारण है कि किसान को सफल बनने के लिये एक कुटुम्ब की नितान्त आवश्यकता है, गावों मे स्त्री पुरुष एक दूसरे पर जितना अधिक निर्भर रहते है उतना शहरों मे नहीं रहते। भारतवर्ष की बात दूसरी है क्योंकि यहाँ का सामाजिक संगठन ग्राम्य जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार ही बना हुआ है। खेती की सफलता के लिये स्त्री का होना आवश्यक है क्योंकि खेती सम्बन्धी बहुत से कार्य घर पर ही होते हैं; और गाँव की स्थिति ऐसी नहीं होती कि वहाँ होटल मिल सकें जिससे किसान उन पर निर्भर रह कर खाने की चिन्ता से मुक्त हो जावें।

खेती ही एक ऐसा धन्धा है जहाँ प्रत्येक प्राणी आदर्श वातावरण में रहकर भी कुटुम्ब के पालनार्थ धन्धे मे सहायता पहुँचा

सकता है। कल्पना कीजिए शहर के रहने वाले एक मजदूर की जो एक कारखाने मे काम करता है। यदि वह अपनी स्त्री और बच्चो को कारखाने मे काम करने के लिए नहीं भेजता तो उसके घर का खर्च नही चल सकता, और यदि वह उनको कारखाने में भेजता है तो यह आवश्यक नहीं है कि उसके स्त्री और बच्चो को उसी कारखाने मे काम मिल जावे। यदि भाग्यवश ऐसा हो भी जावे तो उसके बच्चे और उसकी स्त्री को उसके साथ काम करने का अवसर नहीं मिल सकता। यदि यह बात छोड़ भी दी जावे तो भी बच्चो और स्त्रियो के स्वास्थ्य पर कारखानो के जीवन का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत खेती में इतने विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं कि पुरुष, स्त्री, बच्चे और बूढ़े सभी अपने अनुकूल काम पा सकते हैं, और उस कार्य से उनके स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास को हानि पहुँचने के स्थान पर लाभ पहुँचता है।

यही कारण है कि गांवो मे विवाह शहरों की अपेक्षा कम उमर मे होता है और प्रत्येक युवक और युवती विवाह करता है। क्योंकि गांवों मे बच्चे कुटुम्ब के लिए भारस्वरूप नहीं होते। यही कारण है कि गांवो मे प्रत्येक पुरुष एक समृद्धिशाली बड़े कुटुम्ब के निर्माण करना चाहता है। शहरो मे अपेक्षा कृत छोटे कुटुम्ब निर्माण करने की भावना अधिक बलवती होती है। जिस देश मे समृद्धिशाली कुटुम्ब के निर्माण की भावना काम नही करती उस देश का पतन अवश्यम्भावी है। गांवों मे रहने वालो की स्वभावतः यह आकांक्षा होती है कि वे एक समृद्धिशाली कुटुम्ब का निर्माण करे, यही नहीं गांवो में इसके लिए अनुकूल परिस्थिति भी मिलती है।

शहरी जीवन मनुष्य के जीवन तथा उसकी कार्य शक्ति को क्षीण करने वाला होता है। यही कारण है कि गांवों के कुटुम्बों

का जीवन शहरों के कुटुम्बों के जीवन की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है। किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को लीजिए, जो बराबर गांवों में ही रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को लीजिए। आपको ज्ञात होगा कि गांव के रहने वाले कुटुम्ब की आयु शहर में रहने वाले कुटुम्ब से कहीं अधिक होती है। वास्तव में ग्राम मनुष्य-जनसंख्या की नर्सरी है जहां से मनुष्य रूपी पौध शहरों में लगाई जाती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है, अप्राकृतिक वातावरण में उसका विकास रुक जाता है, और उसका जीवन क्षीण होने लगता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की जीवन शक्ति शहरों में जाकर क्रमशः पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है। यही कारण है कि शहरवाले अच्छे कुटुम्ब निर्माण कर्ता प्रमाणित नहीं होते।

यदि समाज में अच्छे कुटुम्बों के निर्माण की भावना काम करती है तो युवक स्वभावतः ऐसी युवतियों को अपनी पत्नी बनावेंगे जो शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से उत्तम संतान उत्पन्न करने की योग्यता रखती हों। गाँवों में अधिकतर उत्तम संतान की इच्छा से ही विवाह होते हैं। इस कारण अच्छे स्वास्थ वाली लड़की को अच्छा पति मिलने में अड़चन नहीं होती। किन्तु शहरों में सफल माता बनाने की योग्यता का कोई मूल्य नहीं होता। एक शिक्षित शहरी युवक अपनी पत्नी में असीम सुकुमारता, ड्राइंग-रूम-सम्बन्धी शिष्टाचार में कुशलता, तथा उसके मित्रों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता देखना चाहता है। यह निश्चय है कि अस्वस्थ शरीर, और मन की युवतियाँ आदर्श मातायें नहीं बन सकतीं। अतएव यह स्पष्ट होजाता है कि राष्ट्र के लिये अच्छे नागरिक उत्पन्न करने का स्थान गाँव है। जिस प्रकार जल से परिप्लावित उद्यान सुन्दर

पुष्प उत्पन्न करता है और मालाओं में गूंथे जाने पर वह नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गाँवो में मनुष्य जाति उत्पन्न होती और फलती फूलती है, और शहर उसमें से कुछ को लेकर नष्ट करते रहते हैं। वास्तव में शहर मनुष्य जाति के क्षीण करनेवाले स्थान हैं।

यदि गाँवों से शहरों में नया रुधिर न पहुँचता रहे तो शहरों में बहुत निम्नकोटि के स्त्री पुरुष दिखलाई दें। परन्तु गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव श रों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर क्रमशः निस्तेज होकर क्षीण हो जाते हैं। अतएव ग्रामीण जन-संख्या पर ही राष्ट्र की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जन-संख्या गिरी हुई दशा में है तो राष्ट्र की शक्ति क्षीण हुए विना नहीं रह सकती। किसी भी राष्ट्र अथवा जाति की जीवन शक्ति को बनाये रखने के लिये दो बातों की नितान्त आवश्यकता है।(१) देश में कुटुम्ब निर्माण की भावना का होना (२) गाँवों से अपेक्षाकृत स्वस्थ तथा बुद्धिमान स्त्री पुरुषो का शहरों की ओर प्रवास न होने देना। यदि गाँव के सभी उत्तम स्त्री पुरुष शहरों में जाकर बसते जावे तो इसका फल यह होगा कि गावों में निम्नश्रेणी के स्त्री-पुरुष रह जावेंगे, और उनसे उत्पन्न होने वाली संतान उतनी अच्छी न होगी। यदि यह क्रम इसी प्रकार बराबर जारी रहा तो गाँवों में रहने वाली जन संख्या और भी निम्नश्रेणी की होती जावेगी। इस पतन का फल यह होगा कि अन्त मे शहरों को भी निम्नश्रेणी के ही स्त्री पुरुष मिलेंगे और क्रमशः देश में उच्च कोटि के स्त्री पुरुषों की संख्या कम हो जावेगी। जिस प्रकार एक ग्वाला अपने अच्छे बछड़े-बछड़ियों को तो कसाई के हाथ बेंच दिया करे और खराब बछड़े-बछड़ियों से नस्ल पैदा करे तो भविष्य में उसके यहाँ अच्छे पशु न पैदा हो सकेंगे। उसी प्रकार यदि गावों के सब अच्छे स्त्री पुरुष जाकर शहरों में बस जावें तो

उस जाति की शारीरिक और मानसिक अवनति होना अवश्यम्भावी है।

औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त योरोपीय देशों में उद्योग-धंधों की उन्नति के साथ साथ गाँवो से शहरों की ओर जनसंख्या का प्रवाह बहना आरम्भ हुआ था। महत्त्वाकांक्षी स्वस्थ तथा कुशाग्र बुद्धि वाले युवक गाँवों को छोड़-छोड़कर नगरों मे जाकर बसने लगे। फलतः गॉव वीरान होने लगे। आरम्भ में इस प्रवास के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हुए, किन्तु बीसवीं शताब्दी में प्रत्येक पाश्चात्य देश ने अनुभव किया कि महत्त्वाकांक्षी, स्वस्थ और कुशाग्र बुद्धिवाले युवकों के गॉव छोड़ छोड़कर शहरों में जाकर बसने का फल यह हुआ है कि गाँव में अपेक्षाकृत निम्नश्रेणी के स्त्री पुरुष रह गए, और जाति में अवनति के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पहले तो कुछ लोगों का यह विचार रहा कि शहरों में उचित शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा अन्य बातो की सुविधाओं को प्रदान कर देने से यह जातीय अवनति रोकी जा सकती है। किन्तु शीघ्र ही उनको अपनी भूल ज्ञात हो गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि शहरों में शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने से जातीय ह्रास की गति धीमी अवश्य हो सकती है परंतु वह पूर्ण रूप से रोकी नहीं जा सकती। घोड़ा सिखाने वाला चाहे जितना ही होशियार क्यों न हो किन्तु वह खराब नस्ल के घोड़े को दौड़ में नहीं जिता सकता। इसी प्रकार शिक्षा और स्वास्थ्य का चाहे जितना अच्छा प्रबन्ध क्यों न किया जाय जातीय पतन नहीं रुक सकता; यदि गाँवो में केवल निकम्मे लोग रहते हैं। इसी कारण योरोपीय देशों में "गाँवों की ओर लौटो" का आन्दोलन आरम्भ किया गया। ब्रिटिश सरकार ने इङ्गलैंड मे बड़ी-बड़ी जमीदारियों को खरीद कर शिक्षित

युवकों को भूमि और पूंजी देकर उन पर बसाना आरम्भ किया। अब वहाँ यह आन्दोलन क्रमशः जोर पकड़ता जा रहा है।

भारतवर्ष में शताब्दियों के शोषण के कारण गावों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। आज भारतीय ग्रामों की दशा यह है कि जो भी ग्रामीण युवक पढ़ लिख जाता है वह सदैव के लिए गांव छोड़कर शहर में जा बसता है। फिर चाहे उसे शहर में आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ न भी हो। जमींदार शहरो के आकर्षण के कारण अपनी जमींदारियों से दूर शहरों में जा बसे है। यह जमींदार किसानों से प्राप्त धन को गांवो में व्यय न कर शहरों में व्यय करते है। इस कारण गांव निर्धन होते जा रहे हैं। भारतीय ग्रामो का मस्तिष्क और पूंजी बाहर चली जाती है, गांव दिवालिया हो रहे हैं। भारतीय ग्रामों मे जो भी तनिक महत्त्वाकांक्षी बुद्धिमान तथा साहसी होता है वह गांवों में रहकर शहरों की ओर दौड़ा चला जा रहा है, क्रमशः गांवों में द्वितीय और तृतीय श्रेणी के लोग शेष रह गए हैं, और प्रथम श्रेणी के व्यक्ति शहरों में जाकर शक्तिहीन और निस्तेज हो गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीयों का सर्वांगीण पतन आरम्भ हो गया। सारी जाति पर इसका प्रभाव पड़ा है। गांवों में मनुष्यों की छांटन रह जाने के कारण रूढ़ियों की प्रबलता, ईर्ष्या, द्वेष, पुरुषार्थ हीनता तथा भाग्यवाद का प्राबल्य हो गया है। इससे पाठक यह धारणा न बना लें कि हम गांवों से शहरों की ओर जनसंख्या का प्रवास रोकना चाहते हैं। यह प्रवास कुछ हद तक स्वाभाविक है। अतएव यह बिलकुल रोका नहीं जा सकता। हमारा तात्पर्य केवल यह है कि गांवों से जो शिक्षित और पूंजी वाले व्यक्ति भाग-भाग कर चले जाते हैं वे गांव में भी रहना पसन्द करें कि जिससे गांवों को लाभ हो

गांवों में केवल निम्नश्रेणी के ही व्यक्ति न रह जावें जैसा कि आजकल हो रहा है। यह बात हमें न भूलनी चाहिए कि गांव ही हमारे राष्ट्रय जीवन को स्फूर्ति देने वाले हैं।

अब हमें यह देखना चाहिए कि गांवों में महत्त्वाकांक्षी, शिक्षित, धनी और साहसी व्यक्ति क्यों नहीं रहना चाहते। गांवों से जमींदारी के अतिरिक्त यथेष्ट आय के साधन, ऊंचे दर्जे का सामाजिक जीवन, मानसिक विकास, तथा स्वास्थ्यप्रद-मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि कुशाग्र बुद्धि तथा क्षमतावान युवक गांवो से भाग जाते हैं। समस्या बहुत जटिल है। जब तक गांवों में साधारणतः यथेष्ट धन कमाने का अवसर मिलने की सम्भावना न होगी तब तक यह समस्या हल न हो सकेगी। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों में आय के साधन अधिकाधिक उत्पन्न किये जावें। किन्तु भारतीय ग्रामों की आर्थिक दशा इस समय इतनी गिरी हुई है कि साधारण प्रयत्न से वह ठीक नहीं हो सकती। इसके लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता होगी।

हमें आवश्यकता पड़ने पर दबाव डालकर भी बिखरे हुए खेतों की चकबंदी करनी होगी, तथा एक दूसरा कानून बनाकर यह नियम बनाना होगा कि किसी किसान के पास परिवार पोषण योग्य भूमि से कम भूमि न रहे। साथ ही भविष्य में परिवार पोषण योग्य भूमि का भाइयों में बंटवारा न हो सके। अब प्रश्न यह हो सकता है कि इस प्रकार का कानून बना देने से बहुत से किसान बेकार हो जावेंगे। इसके लिये हमें वैज्ञानिक ढंग से संगठित गृह-उद्योग धंधों को सरकारी सहायता से गांवों में स्थापित करना होगा। गृह-उद्योग-धंधों को स्थापित करने का यह अर्थ नहीं है कि उनको उसी प्रकार चलाया जावे जैसे कि वे आज चल रहे हैं। उनको आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से चलाना

होगा। नवीन यंत्रों द्वारा और जहां जहां सम्भव हो पानी से बिजली उत्पन्न करके गांवों के गृह उद्योग धंधों का नवीन संस्करण करना होगा।

पूंजी का प्रबन्ध राज्य की सहायता से हो और तैयार माल की बिक्री प्रान्तीय सिंडिकेट के द्वारा की जाय। खेती पर आज कल जितने लोग निर्वाह कर रहे हैं वे बहुत अधिक हैं और यदि यह नियम बना दिया गया कि परिवार पोषण योग्य भूमि ही एक किसान के पास रहेगी तो बहुत से मनुष्यों को खेती से हटना होगा अत: केवल गृह-उद्योग-धंधों से ही काम न चलेगा। इसके लिये हमें बड़े बड़े उद्योग-धंधों का जहां तक हो सके विकेन्द्रीकरण करना होगा। जो भी मौसमी कारखाने हैं उनको गांवों में स्थापित किया जाय और दूसरे कारखानों को भी जहां तक सम्भव हो वर्कशाप का रूप देकर गांवों में स्थापित करना होगा। इससे यह न समझना चाहिए कि औद्योगिक केन्द्र नष्ट हो जावेंगे और नगरों का ह्रास होने लगेगा। जिन धंधों का केन्द्रीयकरण ही उचित है वे धधे औद्योगिक केन्द्रों में बड़े बड़े कारखानों के रूप में चलते रहेंगे। किन्तु दूसरे धंधो का विकेन्द्रीकरण किया जावेगा। किन्तु यह तभी हो सकता है कि जब भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें पूर्ण सहयोग और साहस के साथ देश की औद्योगिक उन्नति का प्रयत्न करें। भारत सरकार को अपनी कर, व्यापारिक,तथा औद्योगिक नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा तब जाकर देश में यह नवीन औद्योगिक संगठन सफल होगा।

किन्तु उद्योग-धंधों की उन्नति के साथ ही कृषि की उन्नति आवश्यक है, क्योंकि भारतवर्ष में सब-कुछ प्रयत्न करने पर भी अधिकांश जनसंख्या का पालन पोषण कृषि ही करेगा। कृषि की सफलता के लिए किसान को ऋणमुक्त करना होगा। इस संम्बन्ध में

यह बात समझ लेनी चहिए कि थिगले लगाने से काम नहीं चलेगा। जिस प्रकार स्वर्गीय सर प्रभाशकर पट्टनी ने साहस और दृढ़ता के साथ भावनगर राज्य के किसानों को ऋण मुक्त कर दिया उसी प्रकार से बृटिश भारत में भी करना होगा। जमींदारों के शोषण से किसानों को बचाने के लिए लगान संम्बधी कानूनों में अमूल परिवर्तन करना होगा। हर्ष की बात है कि प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इन दो महत्त्वपूर्ण समस्यायों की ओर गया है।

आर्थिक समस्यायों को हल करने के साथ ही गमनागमन की सुविधायें, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्यवर्धक मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध करने होंगे। आर्थिक स्थिति के सुधरने पर गांव के रहने वाले भी इन कार्यों पर व्यय करेंगे। इसके अतिरिक्त राज्य कर्मचारियों की मनोवृति को भी बदलना होगा। आज गांव में रहने वाला नीची दृष्टि से देखा जाता है, उससे अभद्रतापूर्वक बोलना, तथा उसको पद पद पर अपमानित करना, कोई अपराध नहीं समझा जाता। यह सब कठोरतापूर्वक बन्द करना पड़ेगा। तभी ग्रामीण स्वाभिमान पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगा और अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेगा। गांवों के पुनः निर्माण का कार्य अर्धनिद्रित अवस्था में नहीं हो सकेगा। इसके लिए सारे राष्ट्र की शक्ति को केन्द्रित करना होगा और देश के आर्थिक ढांचे में मूलभूत परिवर्तन करना होगा।

ग्राम सुधार

आज भारतवर्ष में ग्राम सुधार अन्दोलन की बहुत चर्चा है। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ग्राम-सुधार विभाग को स्थापित करके गांवों की काया पलट कर देना चाहती है। सरकार का प्रयत्न कहाँ तक सफल होगा यह तो भविष्य ही बतलायेगा किन्तु हमारे

विचार मे जिस प्रकार यह अन्दोलन चलाया जा रहा है वह त्रुटि पूर्ण है और उसके सफल होने मे बहुत संदेह है। हमारा तो यह विश्वास है कि यदि ग्राम-सुधार-योजना में क्रान्तिकारी परिवर्तन न किये गये तो उसका असफल होना अवश्यम्भावी है।

वास्तव में हमारे गांवों की समस्या बहुत उलझी हुई है अतएव जब तक उसका पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं कर लिया जाता तब तक सफलता मिलना कठिन है। आज हमारे ग्रामीण की दशा ठीक उस घोड़े की भाँति है जिसको चारे का अभाव रहता है, शक्ति से अधिक बोझ ढोना पड़ता है, कभी आराम करने को नही मिलता, जिससे क्रमशः वह हृष्ट पुष्ट सुन्दर घोड़ा क्षीणकाय होकर अत्यन्त निर्बल हो गया है। उस मरणासन्न घोड़े की पीठ पर बोझ लाद कर उस पर स्वय बैठे हुए उसका मालिक सोचता है कि घोड़ा बीमार है इसे किसी डाक्टर को दिखलाना चाहिए। किन्तु उसके ध्यान मे यह बात नही आती कि सबसे पहला काम उसे यह करना चाहिए कि वह उस निर्बल और भूखे घोड़े पर से बोझा उतार ले और स्वयं उतर पड़े और उसे आराम की सांस लेने दे। यदि घोड़े का स्वामी सिर्फ इतना ही करे तो बिना किसी डाक्टर अथवा विशेषज्ञ के ही घोड़ा चंगा हो सकता है।

ठीक यही दशा आज हमारे ग्रामीण की हो रही है। विदेशी शासन का शोषण, बढ़ते हुए करों का बोझ, बढ़ा हुआ लगान, जमींदार, महाजन नगरवासी, व्यापारी, दलाल, वकील, तथा शिक्षित वर्ग आदि के वैज्ञानिक शोषण ने भारतीय ग्रामीण के अन्तिम रक्त-बिन्दु को भी चूस लिया है। अतएव ग्राम सुधार पूर्णतः तभी सम्भव है कि जब विना विलम्ब उनका बहुमुखी शोषण रोका जाय। और यह कार्य तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जबकि देश मे उत्तरदायी शासन हो और गाँव वालों में राजनैतिक चैतन्य उदय हो जावे।

इसका यह अर्थ नहीं है कि ग्राम-सुधार आन्दोलन को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जावे। परन्तु हमारा कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हमें इस होने वाले शोषण का सदैव ध्यान रखना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो शोषण को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर थोड़ा सा ध्यान दिया है यह हर्ष की बात है।

इस सैद्धान्तिक बात को ध्यान में रखने के उपरान्त हमें कोई ग्राम सुधार की योजना बनानी चाहिए। आज ग्राम संख्या निर्बल और निर्जीव हो रही है, उसको सतेज बनाने के लिए यह आवश्यक है कि गाँव वालों में अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति से असंतोष उत्पन्न कर दिया जाय जिससे ग्रामीण जनता में अपनी स्थिति में सुधार करने की इच्छा बलवती हो उठे। गाँवों पर बाहर से सुधार लादने में कभी भी स्थायी सफलता नहीं मिल सकती। खेद है कि इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान बहुत कम गया है। शीघ्र सफलता मिलने की आशा में उत्साही कार्य कर्ता गाँव की हर एक बुराई को दूर करने के लिए दौड़ पड़ते हैं किन्तु सुधार ग्रामीणों को छूते तक नहीं, फल यह होता है कि जब कार्यकर्ता का उत्साह मंद पड़ जाता है अथवा वह दूसरे क्षेत्र में काम करने के लिए चला जाता है तब उस गाँव की दशा पहले जैसी हो जाती है। गाँव वाले अधिकाँश बातों को अधिकारियों के दबाव के कारण स्वीकार कर लेते हैं परन्तु वे स्वयं उनको नहीं चाहते। आज गाँवों में जो सुधार कार्य हो रहा है वह अधिकतर इसी तरह का है। ग्राम सुधार कार्य तभी स्थायी और सफल हो सकता है जब सुधार अन्दर से हो न कि बाहर से। साथ ही ग्राम-सुधार कार्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह भी आवश्यक है कि ग्राम सुधार-आन्दोलन को चलाने के लिए ग्रामीण नेतृत्व उत्पन्न किया जाय।

एक दूसरा प्रश्न भी इस विषय मे महत्त्वपूर्ण हैं। अभी तक ग्राम सुधार कार्य को टुकड़े-टुकड़े करके करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु इस प्रकार सफलता मिलना कठिन है। गाँवों की जितनी भी समस्याए हैं वे एक दूसरे से घनिष्ट सम्बंध रखती हैं। अतएव ग्राम-सुधार कार्य मे सफलता तभी मिल सकती है कि जब सारी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ दिया जाय। उदाहरण के लिए ग्रामीण ऋण की समस्या को हीं ले लीजिए यह तभी हल हो सकती है जब मुक़दमे बाज़ी, सामाजिक कुरीतियाँ, खेती की उन्नति, स्वास्थ्य, और सफाई, पशुओं की चिकित्सा और शिक्षा की समस्याएं हल की जायं। फिर पुराने ऋण को चुकाने के लिए कानून बनाने और भविष्य मे पूंजी का प्रबंध करने के लिए खास समितियाँ स्थापित करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार मुक़दमे बाज़ी का रोग दूसरी कुरीतियों तथा मनोरंजन के अभाव से सम्बंध रखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय ग्रामो की समस्याओं को एक एक करके हल नहीं किया जा सकता।

भारतवर्ष में सात लाख के लगभग गांव हैं। यदि मान लिया जाय कि एक गांव की दशा को सुधारने में पांच वर्ष लगेंगे तो कार्य की गुरुता स्पष्ट हो जाती है। ऐसी दशा मे यह निश्चय करना कि ग्राम-सुधार-कार्य की प्रणाली कैसी हो अत्यन्त आवश्यक है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि एक केन्द्रीय ग्राम मे ग्राम-सुधार-केन्द्र स्थापित किया जाय और समीपवर्ती ग्रामों को उस केन्द्र का प्रभाव क्षेत्र बनाया जाय। केन्द्र का ग्राम-सुधार-केन्द्र समीपवर्ती गांवों पर प्रभाव डालने वाला (Reflecting Centre) बने और समीपवर्ती गांव वहां जो कुछ हो रहा है उसको ग्रहण करें। कार्य-कर्त्ता का आरम्भ से ही यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह प्रत्येक गांव मे स्थानीय नेता उत्पन्न करदे

जो उस काम को अपने हाथ में ले ले । नहीं तो इतने गांवों का सुधार करने के लिए अपार धन और असंख्य कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी । जब कार्यकर्ता समझ ले कि स्थानीय कार्यकर्ता इस कार्य को चला सकेंगे तो वह ग्राम सुधार केन्द्र को वहाँ से हटा कर दूसरी जगह ले जाय और स्थानीय कार्यकर्ताओं (नेताओं) को केवल सलाह देता रहे ।

आज भारतीय ग्रामीण-संसार का सब से अधिक निराशावादी, भाग्यवादी और मूर्खता की सीमा तक पहुँचने वाला संतोष लेकर जीवित रह रहा है। सैकड़ों वर्षों से उसका अनवरत शोषण हो रहा है इस लिए उसे विश्वास ही नहीं होता कि कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो उसका शोषण न करे । और न वह इस बात की कल्पना ही करता है कि उसकी दशा का सुधार हो सकता है । अतएव आवश्यकता इस बात की है कि ग्राम सुधार का कार्य करने वाला पहले अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करे और किसानों को अपनी दयनीय अवस्था के प्रति असंतोष उत्पन्न करके उनमें आत्मविश्वास और आत्म सम्मान का भाव उत्पन्न करे । यह कार्य वे लोग ही कर सकते हैं जो कि सेवा भाव से गाँवों में कार्य करने जायँ । नौकरी करने की दृष्टि से जो लोग इस कार्य को करेंगे उन्हें सफलता नहीं मिल सकती । हमारा अनुभव हमें यह बतलाता है कि ग्राम-सुधार-विभाग के कार्यकर्ताओं की नियुक्ति ने गाँव के शोषकों की संख्या को और बढ़ा दिया । जिस प्रकार राज्य के दूसरे कर्मचारी गाँव वालों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार ग्राम सुधार विभाग के कार्यकर्ता भी हैं । यह स्थिति देखकर कभी कभी तो यह विचार प्रबल हो उठता है कि गाँव वालों को इसी प्रकार रहने दिया जाय केवल उनके आर्थिक बोझ को हलका कर दिया जाय । ग्राम-सुधार-कार्य ग्राम-सेवकों से होगा, भाड़े के कर्मचारियों से नहीं हो सकता ।

सेवा भाव से जो लोग गाँवों में रहकर काम करना चाहते हैं उन्हें राज्य सहायता दे। हमारे देश में बहुत से शिक्षित व्यक्ति अपना कार्यकाल समाप्त करने पर भी नगर का मोह नहीं छोड़ते। यदि रिटायर होकर शिक्षित व्यक्ति गाँवों में बसना और गाँव वालों की सेवा करना अपना कर्तव्य समझें तो बहुत कुछ काम हो सकता है। यही नहीं आवश्यकता तो इस बात की है कि चीन की भाँति शिक्षित युवक गाँवों की ओर लौटें और आश्रम स्थापित करके ग्राम सुधार का कार्य करें। आज देश के शिक्षित युवकों को यह कहने की आवश्यकता है—"गाँवों की ओर लौटो"। ग्राम सुधार का कार्य गुरुतर है और यह तभ सम्भव हो सकता है जब राष्ट्र की सम्मिलित शक्ति अर्थात सरकार और जनता दोनों ही उस कार्य में जुट जायँ। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो कुछ इस दिशा में हो रहा है वह व्यर्थ है। यद्यपि जिस प्रकार से इस समय ग्राम-सुधार-कार्य हो रहा है वह दोषपूर्ण है फिर भी उससे देश का ध्यान इस आवश्यक समस्या की ओर आकर्षित हुआ है और गाँवों की स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार होने की भी सम्भावना हो सकती है।

दूसरा परिच्छेद

गांवों की वर्तमान दशा और अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद

हमारे इतिहास के पिछले दो सौ वर्षों की सब से महत्त्वपूर्ण घटना देश में अंग्रेजी हुकूमत का श्री गणेश है। वैसे तो अंग्रेजों के पूर्व भारतवर्ष में एक बार नहीं कई बार विदेशी जातियों ने आक्रमण किया, यहाँ से बहुत सा धन दौलत लूट कर ले गए, किन्तु देश के सामाजिक-संगठन पर उन आक्रमणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। और बावजूद इन विदेशी हमलों के हमारा सामाजिक और आर्थिक संगठन ज्यों का त्यों क़ायम रह सका। इसका कारण यह था कि बाहर से आने वाली जातियों का उद्देश्य केवल हिन्दुस्तान की उस धन दौलत का उपभोग करना था जिस के लिए वह सारे संसार में विख्यात हो चुका था। किन्तु देश में अंग्रेजी हुकूमत के पदार्पण से जो प्रभाव पड़ा वह सर्वथा भिन्न था। जिस समय से भारत वर्ष पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित होने लगा, हमारे देश के प्राचीन आर्थिक संगठन में एक उथल पुथल उत्पन्न हो गई जिसका अन्तिम परिणाम अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। कारण यह था कि जिस समय भारतवर्ष पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित होना आरम्भ हुआ, ब्रिटेन हमारे देश की अपेक्षा एक अधिक उन्नतिशील (advanced) आर्थिक युग में प्रवेश कर चुका था और अंग्रेजी सरकार का हिन्दुस्तान में आने का एक मात्र लक्ष्य ही यह था कि वह अपनी सत्ता के बल पर भारतवर्ष की प्राचीन आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर एक ऐसा आर्थिक ढांचा स्थापित करे जो ब्रिटेन के आर्थिक ढांचे के पूरक का कार्य करने में सफल हो, और जिस से ब्रिटेन को हिन्दुस्तान के आर्थिक लाभ का पूरा

पूरा अवसर मिल सके। और भविष्य में भी जैसे-जैसे ब्रिटेन की आर्थिक-व्यवस्था में परिवर्तन होता गया, ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष के आर्थिक संगठन में उसके अनुकूल परिवर्तन करना अपना प्रथम कर्तव्य समझा। ब्रिटिश सरकार ने इस बात का तनिक भी न ध्यान रक्खा कि उन आर्थिक परिवर्तनों का देश की असंख्य मूक और पद्दलित जनता के हितों पर कितना अवांछ-नीय प्रभाव पड़ेगा। यही कारण है कि हमारे राष्ट्र प्रेमी अर्थ-नीतिज्ञों और राजनीतिज्ञों ने सदा इस बातकी शिकायत की है कि अंग्रेजी सरकार ने भारतवर्ष की अर्थ नीति का एक मात्र आधार ब्रिटेन की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना माना है। और यह नीति इस पराकाष्ठा तक पहुँच गई है, कि यदि हम ध्यान से देखें तो यह प्रकट होते देर नहीं लगेगी कि हिन्दु-स्तान में जो कुछ कार्य ऐसे हुए भी हैं जिनसे यहाँ निर्धन वर्गों को कुछ लाभ हुआ है, या जिनके फल स्वरूप देश में आधुनिक ढंग के औद्योगिक और आर्थिक परिवर्तन हुए हैं, तो उनका एक मात्र कारण ब्रिटेन की आवश्यकता ही रही है। उदाहरण के रूप में मजदूर-संबंधी कानून को ही लीजिए। पाठकों को यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होगी कि हिन्दुस्तान में मजदूर संबंधी कानून का श्रीगणेश इसी वजह से हुआ कि मैनचेस्टर और लंकाशायर की औद्योगिक सफलता के लिए इस प्रकार के कानून बनाना अनिवार्य होगए थे। जब हिन्दुस्तान में कपड़ों की मिलें स्थापित होगईं और उनमें तैयार किया कपड़ा बाजार में ब्रिटिश मिलों में तैयार किए गए कपड़े के मुकाबले में आने लगा तो ब्रिटिश मिल-मालिकों को इस बात की चिन्ता हुई कि किस प्रकार हिन्दुस्तान के बाजारों में ब्रिटिश मिलों का कपड़ा हिन्दुस्तान में तैयार किए गए कपड़े से मंहगा न पड़े इस बात का प्रवन्ध किया जावे। उन्हों ने देखा कि उस समय

हिन्दुस्तान में मजदूरों की भलाई के कानून मौजूद नहीं थे और इस वास्ते यहाँ की मिलों के लिये यह संभव था कि वे कम मजदूरी पर अधिक समय तक काम ले सके। जब कि मैनचेस्टर और लंकाशायर की मिलों को इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं थी। इस वास्ते उनका हित इसी में था कि हिन्दुस्तान में भी ऐसे ही कानून बनाए जावें, ताकि यहाँ पर मिल-मालिकों को अपने मजदूरों का मनचाहा शोषण करने का अवसर न मिले, और उनके काम करने के घंटे निश्चित हो जावें। जिससे यहाँ के मिलों में तैयार किया हुआ कपड़ा ब्रिटिश मिलों के कपड़े की अपेक्षा सस्ता न पड़े और उनको उससे होने वाली आर्थिक हानि न उठानी पड़े। अतः हिन्दुस्तान में मजदूरों के हित-संबंधी कानूनों के बनाने में ब्रिटिश मिल मालिकों ने काफी जोर डाला और उन्हीं के आन्दोलन का परिणाम था कि यहाँ की सरकार को ऐसे क़ानून बनाने पड़े। इस बात का दूसरा उदाहरण हमारे देश में रेलों संबंधी प्रचार का है। यह बात पाठकों के ध्यान रखने की है कि भारतवर्ष में रेलों का जो कुछ प्रचार हुआ है, उस से पहले ईस्ट-इंडिया-कंपनी ने जिसकी उस समय तक देश पर हुकूमत थी, रेलों संबंधी प्रचार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। यदि हिन्दुस्तान में रेल का प्रचार केवल भारतवर्ष के हित की दृष्टि से ही किया गया होता, तो क्या कारण हो सकता है कि ईस्ट-इंडिया-कंपनी ने अपने शासन-काल में इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया ? बात वास्तव मे यह है कि उस समय तक इंगलैंड को हिन्दुस्तान में रेलों के प्रचार से कोई लाभ होने की संम्भावना नहीं थी। किन्तु १९ वीं शताब्दी के मध्य में यह स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ब्रिटेन पूर्ण रूप से एक औद्योगिक राष्ट्र का रूप धारण कर चुका था। हिन्दुस्तान के कोने कोने में वहाँ की मिलों में तैयार किया गया माल पहुँचाने के लिए तेज और सस्ते

आवागमन के साधनों की पूरी आवश्यकता थी। बिना रेलों का प्रचार किये यह सम्भव नहीं था, इस वास्ते इंगलैंड के माल को हिन्दुस्तान में बेचने की सुविधा उत्पन्न करने के लिए भारत- सरकार के लिए देश में रेलों का प्रचार करना अनिवार्य हो गया। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है कि १६ वीं शताब्दी में संसार के अन्य देश भी, जैसे जर्मनी आदि, औद्योगिक क्षेत्र में काफी प्रगति कर चुके थे। इंगलैंड को मिलों को उन से मुकाबला करना पड़ रहा था, साथ ही देश में एकत्रित पूंजी को देश में लगाना लाभदायक नहीं था। ऐसी दशा में यह लाज़मी हो गया कि ब्रिटिश पूंजीपतियों की पूँजी को लगाने के लिये बाहर कोई न कोई साधन ढूँढे जावें। हिन्दुस्तान में रेलों के प्रचार के लिये पूजी की आवश्यकता थी ही, और ब्रिटिश पूंजीपतियों की पूंजी के लिए यह सर्वश्रेष्ठ साधन निकल आया। उपरक्त दो उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिए काफी हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतवर्ष से जिस प्रकार सम्भव हो सके उसी प्रकार अधिक से अधिक आर्थिक लाभ करना अपना प्रथम उद्देश्य माना है। अतः यह जान लेना आवश्यक है कि अब तक इस लाभ के कौन कौन से रूप रहे हैं और उसके कारण हमारे गाँवो पर क्या कुप्रभाव पड़ा है। क्यों कि यह निर्विवाद है कि भारतवर्ष के गाँवों की जो वर्तमान दशा है, जिस क़दर ग़रीबी और बेकारी वहाँ आज पाई जाती है, और जो सर्वांगीय पतन हमारे गाँवो का आज होता जा रहा है, इन सब बातों का मूल कारण आर्थिक लाभ ही है जो आज भी उसी रूप में बराबर जारी है।

इस सम्बन्ध में सब से पहले भारतवर्ष के प्रचीन अर्थिक संगठन के रूप का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेना उचित होगा। जब तक हमारे प्राचीन संगठन का वास्तविक रूप हम नहीं समझ लेते

अंग्रेजी साम्राज्यवाद के कारण इसमें होने वाले परिवर्तनों और उसके परिणामों को भली प्रकार से समझना कठिन होगा। भारतवर्ष के आर्थिक संगठन को समझने के लिये भारतीय गाँवों की आर्थिक व्यवस्था को समझना जरूरी है, क्यों कि हमारे प्राचीन सामाजिक संगठन की इकाई गाँव रहा है। प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था का आधार उसका स्वावलम्बी होना था। अधिक स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारे गाँवों का सारा आर्थिक ढांचा इसी नींव पर खड़ा किया गया था कि गाँव के रहने वालों की जितनी भी आवश्यकताएं हैं वे अधिकांश में उत्पन्न वस्तुओं से ही पूरी की जा स और उनके जीवन की बहुत थोड़ी आवश्यकाताओं की पूर्ति के लिए गाँव के बाहर से आई हुई वस्तुओं की जरूरत हो। उदाहरण के लिये यह कहा जा सकता है कि खाने के वास्ते जितनी भी वस्तुओं की जरूरत होती है वे सब प्रत्येक परिवार, जो कि खेती करता है, अपनी आवश्यकता के अनुसार उत्पन्न कर लेता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गाँव में एक वर्ग उन लोगों का होता था जो हाथ की दस्तकारी से गाँव के किसानों की खाने के अलावा अन्य आवश्यकताएँ पूरी करता था। जैसे प्रत्येक गाँव में एक लुहार, एक बढ़ई एक सुतार, एक सुनार, एक कुम्हार, एक तेली, एक खवास, एक धोबी और एक जुलाहा, हुआ करता था जो कि गाँव वालों की विभिन्न जरूरतों को पूरी करते थे। इन लोगों को खाने के लिए वस्तुएं किसान परिवारों से प्राप्त हो जाती थी। भंगी, धोबी, नाई कुम्हार, आदि लोगों का तो प्रत्येक परिवार से वेतन के रूप में कुछ अनाज बंधा रहता था जो हर फसल पर उनको दे दिया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रायः हर एक गाँव में पुरोहित होता था जो धार्मिक कार्यों के समय गाँव वालों की सहायता करता था, और एक महाजन भी होता था जो व्यापार करता था और आस पास के गाँवों से या अन्य स्थानों से उनके लिए वे वस्तुएं

लाता था जो कि गाँव में उत्पन्न नहीं हो सकतीं थीं। नमक और मसाला आमतौर से बाहर से आता था। उनके अलावा और भी कुछ ऐसी वस्तुएं होतीं थीं जिनको समय समय परिबाहर से मँगाने की आवश्यकता पड़ती थी। गाँ का महाजन ही यह कार्य करता था, साथ ही बह साहूकरी भी करता था और वक्त पर रुपया भी लोगों को उधार देता था, यद्यपि उस समय रुपया की और आवश्यकता बहुत कम थी। प्रत्येक गाँव में एक पटेल, पटवारी चौकीदार आदि लोग भी रहते थे जो शांति और व्यवस्था क़ायम रखने के लिये तथा लगान वसूल करने के लिये जिम्मेदार होते थे। और बहुत से गांवों में इन लोगों के अलावा एक पंचायत भी होती थी जिस पर कि शासन व न्याय का बहुत कुछ भार रहता था। संक्षेप में प्राचीन गांव का बाहर की दुनिया से कोई विशेष संपर्क नहीं होता था और अपनी आवश्यकताओं और अपने अस्तित्व के लिए वह लगभग पूर्णतया स्वतंत्र और स्वावलम्बी होता था। खाद्य पदार्थ तथा अन्य वस्तुएं जो गाँव के किसान और दस्तकार लोग उत्पन्न करते थे वे इसलिये नहीं होती थीं कि देश और विदेश के बाज़ारों में बेची जावें, उनका तो उद्देश्य होता था गाँव वालों की माँगों को पूरी करना। एक गाँव और दूसरे गाँव और शहर में व्यापार होता था, लेकिन बहुत कम।

हमारे प्राचीन आर्थिक संगठन का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण यह था कि कृषि और उद्योग में एक उचित संतुलन स्थापित था। किसी एक उद्योग विशेष पर ही अधिकांश जनता का निर्वाह निर्भर नहीं था, जैसा कि आज हम देखते हैं कि भारतवर्ष की तीन चौथाई आबादी का धंधा केवल खेती करना ही है।

जब ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी का भारतवर्ष पर राज्य हुआ, उस समय यहाँ उपरोक्त प्रचीन आर्थिक संगठन स्थापित था जैसा कि पहले लिखा जा चुका है ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी का भारतवर्ष

में पदार्पण करने का कोई राजनैतिक लक्ष्य नहीं था, राज्य सत्ता की आवश्यकता और महत्ता तो उसी सीमा तक थी कि उससे अपने अन्य निर्दिष्ट लक्ष्य की पूर्ति में पूरी पूरी सहायता मिलेगी। यह लक्ष्य था भारतवर्ष से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ उठाना, और यहाँ की अर्थ नीति पर नियंत्रण स्थापित करके देश का हर प्रकार से आर्थिक लाभ उठाना। अब हम देखेंगे कि अपने उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी को किस नीति का पालन करना पड़ा और उस का हमारे देश की प्राचीन आर्थिक व्यवस्था पर कैसा प्रभाव पड़ा।

ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने इस संबंध में आरम्भ में जिस नीति को अपनाया उसको समझने के लिए यह ध्यान में रखना जरूरी है कि उस समय इंगलैंड व्यापारिक-क्रान्ति के युग में प्रवेश कर चुका था। और वहाँ पर बड़ी बड़ी व्यापारिक कम्पनियों का बोलबाला था, जिनको राज्य की ओर से किसी देश विशेष से व्यापार करने का एकाधिार मिल जाता था। उस समय ब्रिटेन ने औद्योगिक राष्ट्र का रूप धारण नहीं किया था, और इस लिये उसके सामने अपनी मिलों की तैयार वस्तुओं की बिक्री और उनके लिये आवश्यक कच्चा माल प्राप्त करने का प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ था जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे। यह समस्या तो १८ वीं शताब्दी के अन्त ओर १९ वीं शताब्दी के आरम्भ से शुरु होती है, जब कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ब्रिटेन एक औद्योगिक राष्ट्र बन जाता है। इसके पहले तो वह एक विशुद्ध व्यापारी मुल्क था जहाँ की बड़ी बड़ी कम्पनियाँ विदेश से व्यापार करके अपने देश को सम्पत्ति-शाली बना रही थीं। ईस्ट-इन्डिया कम्पनी भी एक ऐसी ही व्यापारिक कम्पनी थी जिसे जिसे हिन्दुस्तान और इंगलैंड के बीच में होने वाले व्यापार

के संबंध में एकाधिकार प्राप्त था। यह एकाधिकार सन् १८१३ में समाप्त होगया जब कि अन्य ब्रिटिश व्यापारियों को भी व्यापार, करने की आजादी मिल गई। इसके अतिरिक्त चाँन से होने वाले व्यापार, समुन्द्री किनारे के व्यापार, और अन्दरूनी व्यापार की वस्तुओं पर भी कम्पनी क़ा एकाधिकार स्थापित था। उदाहरण के लिये हमारे देश का अफ़ीम, नमक आदि का व्यापार बिल्कुल कम्पनी के ही हाथ में था।

इन तमाम विशेषाधिकारों से सुसज्जित और देश की राजनैतिक सत्ता अपने हाथ में करके ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भारत वर्ष में ऐसी आर्थिक नीति का अनुसरण किया जिसका एक मात्र परिणाम देश को उत्तरोतर निर्धन बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। इस प्रकार हम देखेंगे कि जिस दरिद्रता की दशा को आज भारतवर्ष पहुँच गया है और यहाँ के ७ लाख गाँवों में जो भूख और बेकारी का साम्राज्य आज स्थापित है इसका मूल कारण ब्रिटिश साम्राज्य की वह अर्थ नीति है जिसका आरम्भ ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी द्वारा सब से पहले किया गया था, और जो आज दिन तक बदस्तूर जारी है। अब हम इस आर्थिक शोषण का तनिक अधिक विस्तार पूर्वक वर्णन कर लेना उचित समझते हैं।

ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने भारतीय भूमि पर पदार्पण करते ही देश का आर्थिक शोषण करना आरम्भ कर दिया। सब से पहली बात तो यह है कि कम्पनी को भारतीय व्यापारियों के मुक़ाबले में बंगाल के नवाबों से यह सुविधा मिली हुई थी कि जिन चीजों में वह व्यापार करती थी उन पर उस समय के क़ानून के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक उनको ले जाते समय उसे कर नहीं देना पड़ता था। और कम्पनी के नौकर जो व्यक्तिगत हैसियत से व्यापार करते थे वे भी अपनी ज़बरदस्ती से इस प्रकार क

नहीं देते थे। इसके अलावा व्यापारिक क्षेत्र में जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कई बातों में कम्पनी को एकाधिकार प्राप्त था जिसका उसने पूरा पूरा दुरुपयोग किया। कम्पनी के दलाल लोग देश के कोने कोने तक पहुँचने लगे, और दस्तकारों को इस बात के लिए मजबूर करते थे कि वे अपना माल किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ न बेचें और केवल उन्हीं को बेचें। ऐसी हालत में यह समझना मुश्किल नहीं है कि जिस क़ीमत पर ये दलाल लोग माल ख़रीदते थे वह बहुत ही कम होती थी। जिन वस्तुओं के व्यापार पर कम्पनी को एकाधिकार प्राप्त था, उनकी क़ीमत कम्पनी के कर्मचारी निश्चय करते थे, जिसके फल स्वरूप माल पैदा करने वाले लोगों को बहुत हानि उठाना पड़ती थी। जुलाहों को आधी मज़दूरी पर कम्पनी के लिए ज़बरदस्ती काम करने को मजबूर किया जाता था। जो लोग इस प्रकार होने वाली आर्थिक हानि से बचने के लिए कभी यदि अपना वायदा पूरा करने में असफल रहते थे तो उनको कई प्रकार का दण्ड-भोगना पड़ता था। उन पर जुर्माना किया जाता था, उनको कैद की सज़ा दी जाती थी और ज़रूरत समझने पर उनको शारीरिक सज़ा भी दी जाती थी। कच्चे रेशम बुनने वालों के साथ भी अत्याचार होता था, और लोगों के इस इरादे से अँगूठे तक काट दिये गए कि वे भविष्य में अपना काम न कर सकें। इस प्रकार व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में कम्पनी ने अत्याचार पूर्ण आर्थिक लाभ जारी रखा, इससे किसी दशा में भी इनकार नहीं किया ज़ा सकता।

भूमि सम्बन्धी जो कम्पनी की आरम्भ में नीति थी, वह भी देश के आर्थिक हित की दृष्टि से उतनी ही घातक सिद्ध हुई है, जितनी कि उसकी औद्योगिक और व्यापारिक नीति। देश के इतिहास में वह ऐसा समय था जब कि संसार के अन्य देशों की तरह हिन्दुस्तान को भी अत्यन्त प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी

सामन्तवाद से मुक्ति मिलना चाहिए थी। इतिहास के विद्यार्थियों को इस बात का ज्ञान है कि उस समय देश में उन सामाजिक परिस्थितियों का जन्म और शक्ति-वर्द्धन हो रहा था, जिनका यदि विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा गला न घोंटा जाता तो एक मात्र आवश्यक परिणाम सामन्तवादी प्रथा का अन्त करना ही होता। किन्तु ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने अपने लाभ के लिये इस प्रतिक्रिया-वादी व्यवस्था को न केवल मरने से बचा लिया, किन्तु उसको और मजबूत बना दिया। बंगाल, बिहार, और संयुक्त-प्रान्त तथा मद्रास के कुछ भागों में किसानों से उनके ज़मीन सम्बन्धी स्वामित्व के अधिकार छीन लिये गये और वे अधिकार उन बड़े बड़े जमींदारों को सौंप दिये गए जिनका उनके कब्जे में आने वाली भूमि पर वास्तव में कोई न्यायोचित अधिकार नहीं था। कम्पनी ने इस जमींदारी प्रथा को जन्म देकर देश में सदा के लिए एक ऐसा स्थायीस्वार्थ (vested interest) उत्पन्न कर दिया जो सदा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साथ देता रहा है और देश की स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़े अटकाना अपना प्रथम कर्तव्य समझता है। जमींदारी प्रथा के कारण किसानों पर भी कर के बोझ ने अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लिया। कम्पनी ने जमींदारों से बहुत ज्यादा लगान लेना निश्चय किया, और उसकी अदायगी के लिए उनको इस बात की पूरी पूरी छूट दे दी गई कि वे किसानों से जितना चाहें उतना, जिस रूप में, और जिस प्रकार वे उचित समझें कर वसूल करें। कम्पनी ने अपना किसानों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखा और न उसने इस बात की चिन्ता की कि ज़मींदार लोग किसानों के साथ कितनी ज्यादतियाँ करते हैं। इस लूट का गाँवों की आर्थिक दशा पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा और किसानों की आर्थिक स्थिति दिनों दिन बिगड़ती गई। जिन जिन प्रदेशों में ज़मींदारी प्रथा स्थापित की गई, वहाँ तो ज़मींदार

किसानों को अपनी शक्ति भर लूटने लगे, और जहाँ जहाँ यह प्रथा स्थापित नहीं की गई और किसानों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित रहा वहाँ लगान के दर में बराबर वृद्धि होती रही, यहाँ तक कि असली पैदावार का पूरा आधा भाग सरकार लेने लगी। कम्पनी ने किसानों पर लगान का बोझ बराबर किस हद तक बढ़ाया इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जहाँ सन् १८१२-१३ में कम्पनी को लगान से कुल आय लगभग ५० लाख पौंड थी, सन् १८५७-५८ में यह आय बढ़कर १६० लाख पौंड के लगभग हो गई थी। इन बातों के अतिरिक्त एक प्रकार की लूट और भी उस समय देश में जारी थी जिसका कम्पनी से एक संस्था की हैसियत से कोई सम्बन्ध नहीं था, किन्तु जो कम्पनी के भारत स्थित कर्मचारियों द्वारा की जाती थी। ये लोग कम्पनी के अलावा अपनी निजी हैसियत से भी बहुत सा व्यापार करते थे और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये अत्यन्त ज्यादती पूर्ण व्यवहार करते थे। इस बुराई ने यहाँ तक घर कर लिया था कि गवर्नर-जनरल जैसे सर्वोच्च कर्मचारी भी व्यक्तिगत रूप से व्यापार करते थे। हमको इसके एक नहीं अनेकों प्रमाण अंग्रेज लेखकों द्वारा ही मिलते हैं, जिनके विषय में भारतवर्ष का पक्षपात करने का संदेह करना भी निराधार होगा। लार्ड मेकाले ने लार्ड क्लाइव पर जो प्रथम गवर्नर-जनरल था, एक निबन्ध लिखा है, उसमें कम्पनी के शासन का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक स्थान पर उनका लिखना है "कि कम्पनी के कर्मचारियों ने कम्पनी के लिए नहीं बल्कि अपने निजी स्वार्थ के लिए देश के सारे अन्दरूनी व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। विदेशी व्यापारियों और माल पैदा करने वालों को सस्ता बेचने के लिये और महँगा खरीदने के लिये मजबूर करते थे। कम्पनी का प्रत्येक कर्मचारी अपने मालिक के

सम्पूर्ण अधिकार रखता था और उसके मालिक को कम्पनी के समस्त अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार कलकत्ते में बहुत बड़ा वैभव एकत्रित किया गया जब कि ३ करोड़ जनता कँगाली की पराकाष्ठा को पहुँचा दी गई। वे अत्याचार के नीचे रहने के आदी थे, किन्तु इस प्रकार के अत्याचार के नीचे रहने के लिए कभी नहीं"। भारतवर्ष से कितना रुपया इँगलैंड को जाता था इस सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुमान लगाया गया है। १७ वीं शताब्दी के अन्त मे भारतवर्ष से ३० लाख पौंड हर साल इँगलैंड को जाता था। और इसमे बराबर बहुत तेजी से वृद्धि होती रही यहाँ तक कि १८५५ और १८५६ के बीच में इसकी औसत ७७ लाख ३० हजार पौंड लगाई गई है। जिस देश से हरसाल बराबर वर्षों तक इतनी दौलत बाहर जाती रहे वहाँ की जनता कितना निर्धन हो जावेगी इसका सहज ही में अन्दाज लगाया जा सकता है। इस लूट और उससे होने वाले शोषण की साक्षी स्वयं अँग्रेज लेखकों और अंग्रेज कर्मचारियों ने भी दी है।

अब तक देश के आर्थिक शोषण के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह उस काल से सम्बन्ध रखता है जबकि इङ्गलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के कारण बड़े बड़े औद्योगिक कल कारखाने खड़े नहीं हुए थे और इङ्गलैंड एक व्यापारी देश था। यह हमारे शोषण की प्रथम अवस्था थी। इसके कारण हमारे देश के प्राचीन, आर्थिक व्यवस्था में जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, यद्यपि कम्पनी और उसके कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली लूट के कारण देश के उद्योग धंधों और व्यापार को बहुत ठेस पहुँची और वह निर्धन होता गया।

इसके बाद १८ वीं शताब्दी के अन्त और १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति के कारण इङ्गलैंड को

आर्थिक ढांचा बिलकुल बदल गया। अब इङ्गलैंड एक पूर्ववत् व्यापारी देश नहीं रहा। वहाँ बड़े बड़े कल कारखाने खुल गये जिनमें बड़े पैमाने पर अधिक परिमाण में माल उत्पन्न होने लगा है। इङ्गलैंड के आर्थिक ढांचें में इस प्रकार आमूल परिवर्तन हो जाने के कारण इस बात की भी आवश्यकता हुई कि भारत-वर्ष के आर्थिक संगठन में भी अवश्यक परिवर्तन किया जावे। यद्यपि ईष्ट इन्डिया कम्पनी की अब तक की आर्थिक नीति का परिणाम भी हमारे उद्योग धन्धों और व्यापार के लिए अच्छा नहीं हुआ था, लेकिन उसके कारण देश की आर्थिक व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्तन हुआ हो ऐसी बात नहीं थी। कृषि और उद्योग के बीच में प्राचीन संतुलन उपस्थित था, हालांकि कम्पनी के शोषण की वजह से देश निर्धन अवश्य हो गया था। लेकिन अब स्थिति बिलकुल दूसरी थी। ब्रिटेन ने एक अद्यौगिक राष्ट्र का रूप धारण कर लिया था। उसको कच्चे माल की जरूरत थी और मिलों में तैयार माल के लिए बाजार चाहिएँ थे। अतः हिन्दुस्तान के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट करने की नीति अख्तियार की गई, इङ्गलैंड के लिए कच्चे माल की पैदावार का इन्तजाम किया गया, और वहाँ से आने वाले तैयार माल को हिन्दुस्तान के बाजारों में अधिक से अधिक मात्रा में बेचने का प्रयत्न किया जाने लगा। इन सब बातों का असर हिन्दुस्तान के लिए बहुत बुरा हुआ। हमारे यहाँ के प्राचीन आर्थिक संगठन में कृषि और उद्योग के बीच में जो सन्तुलन था, उसका नाश हो गया। हिन्दुस्तान में खेती ही एक मात्र धंधा रह गया और जिन लोगों की दस्तकारी नष्ट हो चुकी थी उनको लाजमी तौर पर खेती का धंधा अपनाना पड़ा। खेती भी खाद्य पदार्थों की न होकर व्यापारिक पदार्थों की (Commercial products) को जाने लगी। इससे किसानों को लाभ होने की सम्भावना

थी। लेकिन अज्ञान, अशिक्षा और संगठित होने के कारण वे संगठित और चतुर दलालों का मुकाबला नहीं कर सके और उनके चंगुल से अपने को बचाना उनके लिए सम्भव नहीं हुआ। इस वास्ते इस प्रकार की खेती से उनको कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों के सम्पर्क में आने से दुनिया के बाजार में भाव के उतार चढ़ाव का असर उन पर भी पड़ने लगा जिससे लाभ उठाने की योग्यता किसानों में नहीं थी। अतः हिन्दुस्तान का संसार की अर्थ व्यवस्था से सम्बन्ध होने के फलस्वरूप उसको लाभ की अपेक्षा हानि भी अधिक हुई। गृह उद्योगों के नष्ट हो जाने से जो लोग बेकार हुए उनके लिये, अन्य कोई चारा नहीं रहने से, खेती की शरण लेना अनिवार्य हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि धरती पर जन-संख्या का भार आवश्यकता से अधिक बढ़ गया, और आज तो इस सवाल ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर लिया है कि देश की सारी आर्थिक समस्याओं का यह केन्द्र ही हो गया है।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इस काल की आर्थिक नीति का आधार हमारे प्राचीन उद्योग धंधों का नाश करना था। अतः अब हम संक्षेप में उन उपायों का वर्णन करेंगे जो हमारे उद्योग धंधों को नष्ट करने के लिए काम लाये गए थे। हिन्दुस्तान में इङ्गलैंड की मिलों से तैयार माल बिना महसूल या बहुत कम महसूल पर आ सकता था जब कि हिन्दुस्तान में बने माल पर इङ्गलैंड में बहुत ज्यादा महसूल लगता था। इस सम्बन्ध में हाउस आफ कामन्स द्वारा नियुक्त एक सेलेक्ट कमेटी के सामने सन् १८४० में गवाही देते हुए श्री मोन्टोगोमेरी मार्टिन ने जो कुछ कहा वह इस अत्याचारपूर्ण नीति का एक अत्यन्त जीवित उदाहरण है। मि० मार्टिन ने कहा, "पिछले पचीस वर्षों में हमने भारतीय प्रदेशों को अपने मि.ां का तैयार माल लेने को

मजबूर किया है; ऊनी माल बिना महसूल के, सूती माल २½ प्रतिशत महसूल पर, और अन्य चीजें एक अनुपात में, जबकि इस दरमियान में हमने भारतीय माल पर १०, २०, ३०, ५०, १०० ५०० और १००० प्रतिशत महसूल तक लगाया है। ..सूरत, ढाका, मुरशिदाबाद तथा अन्य स्थानों का जहाँ देशी उद्योग धंधे चलते थे जो नाश और पतन हुआ है वह इतना दुःखद है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह सब उचित व्यापार के दरमियान हुआ हो, ऐसा मैं नहीं मानता, मैं समझता हूँ कि यह एक शक्तिवान की कमजोर पर आजमाई गई शक्ति का नतीजा है।" इसके अतिरिक्त देश के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान को माल लाने और ले जाने पर जो चुङ्गी पहले लगती थी उसमें भी वृद्धि कर दी गई और 'रवन्ना' का जो नया तरीका निकला गया उसके कारण अनेकों असुविधाएं व्यापारी और औद्योगिक वर्ग के हो जाने से देश के उद्योग धंधों से नाश का यह एक और स्वपंत्र कारण बन गया। इस प्रकार भारतवर्ष के अन्दर और बाहर दोनों जगह ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार की आर्थिक नीति को काम में लाना शुरू किया कि उसका एक मात्र ननीजा देश के उद्योग धन्धों का नाश करना ही हुआ। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों ने भी भारतीय उद्योग धन्धों को मदद दी। भारतवर्ष में तैयार चीजों के नमूनों का इन प्रदर्शनियों में प्रदर्शन होने के कारण, विदेशी व्यापारियों को यह मालूम हो गया कि हिन्दुस्तान में किस प्रकार की चीजें पसन्द की जावेंगी और उन्हों ने उसी नमूने की चीजें बना कर भेजना शुरू किया। भारतीय दस्तकारों को इस लिए भी मजबूर किया गया कि वे अपनी अपनी दस्तकारी सम्बंधी गुप्त बातें अंग्रेजों को बतावें। सारांश यह है कि हर तरह से इस बात की कोशिश की गई कि हमारे उद्योग धन्धों का नाश कर दिया जावे। और मोटे रूप से हम कह सकते हैं कि

१६ वीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दुस्तान के पुराने उद्योगों के नाश करने का यह सिल-सिला खतम हो चुका था।

इसके बाद अंग्रेजी हुकूमत की हमारे देश की अर्थ व्यवस्था के बारे में आज तक यही नीति रही है कि हिन्दोस्तान में नए उद्योग धन्धों को पनपने से रोका जावे। और यहाँ से इंगलेंड की मिलों के लिए कच्चा माल भेजा जावे। हमारे आयात और निर्यात व्यापार की ओर अगर हम दृष्टि डालें तो यह बात स्पष्ट होंते देर न लगेगी कि आज हम मशीन द्वारा बना हुआ माल बाहर से अधिकांश में मँगाते हैं और हमारे यहाँ से कच्चा माल बाहर जाता है। हमारी विदेशी सरकार की व्यापार नीति, औद्योगिक नीति, करेन्सी नीति, और साथ में रेलों की नीति का भी एक मात्र यही लक्ष्य रहा है कि हमारे उद्योग धन्धोंको न बढ़ने दिया जावे और हिन्दुस्तान से कच्चा माल बराबर बाहर जाता रहे। इस विषय में सरकार की विनमय दर सम्बन्धी नीति का उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा। सरकार के खिलाफ बराबर यह आरोप बरसों से लगाया जा रहा है कि वह जान बूझ कर विनयम दर १ शि० ६ पै० कायम रखने की कोशिश करती रही है, हालांकि इससे देश को और खास तौर से उसके किसान वर्ग को बहुत नुकसान पहुँचा है। देश की मांग इस बारे में १ शि० ४ पै० रही है। पाठक यह बात आसानी से समझ सकते हैं कि १ शि० ४ पै० अगर एक रुपये के बराबर है तो हमारे किसानों को उनकी पैदावार के ज्यादा रुपये मिलेंगे, लेकिन अगर विनमय दर १ शि० ६ पै० हो, जैसा कि आज है, तो उनको अपनी पैदावार के कम रुपये मिलेंगे। इसके अलावा बाहर से आने वाला माल इस ऊँची दर पर (१ शि० ६ पै०) सस्ता पड़ता है। अतः उस माल के लिये हमारे देश में बनी चीज़ों का मुकाबला करना आसान हो जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि

इस विनमय दर से इंगलैंड का माल हिन्दुस्तान में सस्ता पड़ता है और यही कारण है कि हमारी सरकार बावजूद इतनी मुखालफत के इस दर को कम करने के लिये तैयार नहीं है।

सरकार की उक्त नीति के बावजूद भी आज हिन्दुस्तान में कुछ उद्योग धंधे देखने को मिलते हैं। इनकी शुरुआत वैसे १९वीं शताब्दी की अन्तिम चौथाई में हो जाती है लेकिन गत महा युद्ध के बाद खास तौर से हमारे उद्योग धंधों में कुछ उन्नति हुई है। इसका एक कारण तो यह था कि जब लड़ाई के समय में इंगलेंड के कारखाने लड़ाई का सामान तैयार करने में लग गए तो भारतीय मिलों को उन्नति करने का अच्छा मौका मिल गया। इसके सिवाए देश में राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप सरकार को मजबूर होकर भारतीय मिल मालिकों को कुछ रियायतें देनी पड़ीं। फिर भी भारतीय सरकार की व्यापारिक और औद्योगिक नीति पूरी तौर से राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती। और आज भी देश की ७० फी सदी से अधिक आवादी का गुजर खेती से ही होता है और देश की सारी पैदावार का ६० प्रतिशत हिस्सा खेती की पैदावार ही है। हमारे गृह उद्योगों की दशा बिलकुल गिरी अवस्था में है और सरकार इस ओर से सदा उदासीन रही है। सन् १९२९ में जिस व्यापारिक मन्दी का श्री गणेश हुआ उसके कारण हमारे किसानों की दशा और अधिक गिर गई और हमारी सरकार ने तब भी अपनी पुरानी नीति बदस्तूर जारी रखी। रुपये को पौंड के साथ जोड़ कर जब कि पौंड का सोने से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया था और सोने के मुकाबले में उसका भाव गिर रहा था इङ्गलेंड ने इतना और किया कि अपना बहुत सा बोझ हिन्दुस्तान पर लाद दिया। इसी तरह उसने ओटावा का समझौता करके ब्रिटिश माल के लिए हिन्दुस्तान में सुविधा प्राप्त करली और

यही परिणाम भारतवर्ष और ब्रिटेन के बीच में किए गए बाद के व्यापारिक समझौते का हुआ।

ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीति का अब तक हमने जो वर्णन किया वह स्पष्ट रूप से यह जाहिर करता है कि अंग्रेजी हुकूमत ने बराबर भारतवर्ष का आर्थिक लाभ इङ्गलैंड के फायदे के लिये किया है और आज भी वह लाभ कायम है। उसका नतीजा हमारे देश के लिये जो कुछ हुआ है वह किसी से छिपा नहीं। भारतवर्ष जैसे देश का जहाँ प्राकृतिक साधनों की इतनी प्रचुरता हो, इतना निर्धन होना इस नीति को ध्यान में रखकर ही समझ में आ सकता है। अतः अगर हम यह कहें कि हमारे देश की अर्थात् हमारे गाँवों की वर्तमान दुर्दशा का मूल कारण अंग्रेजी साम्राज्यवाद है तो यह गलत न होगा। और इसी लिए आज प्रत्येक विचारवान आदमी इस नतीजे पर आ गया है कि वर्तमान गिरी हुई स्थिति को सुधारना मुख्य काम है।

तीसरा परिच्छेद

कृषि

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहाँ की जनसंख्या की तीन-चौथाई भाग प्रत्यक्ष रूप से खेती पर ही निर्भर है। यह कहने मे अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हमारे देश का सारा आर्थिक ढाँचा उसी दशा मे सुव्यवस्थित रूप से चल सकता है जब कि देश के इस राष्ट्रीय उद्योग की दशा पूर्णतः संतोषजनक हो। किन्तु दुर्भाग्यवश खेती की दशा अत्यन्त शोचनीय है। आज सब ओर से इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि खेती की पैदावार और उसका लाभ बढ़ाया जावे। प्रान्तीय कृषि-विभाग, खेती की उन्न त के लिए प्रयत्नशील हैं। अच्छे औजार, अच्छे बैल, अच्छे बीज उत्तम खाद, और वैज्ञानिक ढंग की खेती का प्रचार किया जा रहा है। यह सब सुधार आवश्यक हैं, किन्तु जब तक भूमि सम्बन्धी समस्याओं का हल नहीं होता तब तक कृषि की उन्नति नहीं हो सकती। इस परिच्छेद में हम उन सभी समस्याओं पर प्रकाश डालेंगे कि जिनके हल होने से खेती की उन्नति हो सकती है।

आज भारतवर्ष में खेती की भूमि का अभाव है। भूमि पर जनसंख्या का इतना अधिक बोझ है कि वह उसे सहन नहीं कर सकती। खेती पर निर्भर रहने वालों की संख्या पिछले पचास साठ वर्षों में बढ़ती ही गई। इसका फल यह हुआ कि आज प्रत्येक किसान के पास साधारणतः बहुत कम भूमि रह गई है। वह थोड़ी सी भूमि भी छोटे छोटे टुकड़ों में बटी हुई होने के

कारण इस योग्य नहीं रह गई है कि उस पर खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो सके।

प्रश्न यह है कि आखिर यह हुआ क्यों कर। क्या भारत में उद्योग-धन्धों का अभाव था जो कि सारी की सारी जनसंख्या खेती की ओर झुक पड़ी ? बात यह नहीं थी कि अंग्रेजों के आने के समय भारतवर्ष औद्योगिक तथा कृषि-प्रधान देश था, क्रमशः विदेशियों का यहाँ राजनैतिक प्रभुत्व हो गया और उसी समय इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसके फल स्वरूप इंगलैंड में बड़ी मात्रा में सम्पत्ति का उत्पादन आरम्भ हुआ। किन्तु इंगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति की सफलता के लिए पूँजी और बाजार की आवश्यकता थी। इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने का केवल एक ही साधन था—भारतवर्ष से पूँजी प्राप्त करना और उसे अपने माल का बाजार बनाना। बस, अंग्रेज शासकों को मातृभूमि इंगलैंड के उद्योग-धन्धों की सफलता के लिए हिन्दोस्तान को कृषि प्रधान देश बनाने की आवश्यकता हुई। इसके लिए यह अनिवार्य था कि हिन्दुस्तान की अनेक कलापूर्ण दस्तकारियों और उद्योग-धन्धों को जो ब्रिटिश माल का मुकाबला करने वाले थे, प्रोत्साहन न दिया जाय। अपनी राजनैतिक प्रभुता का अंग्रेजी हुकूमत ने भारतवर्षके आर्थिक शोषण के लिए परा परा उद्योग किया—जैसा कि आज भी वह कर रही है और इस प्रकार हिन्दुस्तान के पुराने उद्योग-धंधों का नाश हो गया। इस प्रकार अपने पुराने पेशों से हाथ धो बैठने पर वे लोग जो अब तक दस्तकारी और गृह-उद्योगों में लगे हुए थे अपने जीवन निर्वाह के लिए खेती करने के लिए विवश हो गए। फल यह हुआ कि खेती करने वालों की संख्या बराबर बढ़ने लगी और उसकी वृद्धि का प्रभाव खेती पर बहुत बुरा पड़ा। यह ध्यान में रखने की बात है कि भारतवर्ष में

जिस समय खेती पर निर्भर रहने वालों की संख्या बढ़ रही थी उस समय अन्य देशों में खेती पर निर्भर रहने वालों की जनसंख्या का दूसरे धंधों में लगे हुए लोगों से अनुपात बराबर घटता जा रहा था। अतः हमारे देश की कृषि सुधार संबन्धी सबसे पहली आवश्यकता यह है कि धरती पर बढ़ते हुए भार को किसी न किसी प्रकार कम किया जाय और भविष्य के लिए इस बात का समुचित प्रबंध हो कि फिर से यह भार बढ़ने न पाये। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि आवस्यकता से अधिक खेती में लगे हुए लोगों को उससे पृथक करके अन्य धन्धों में लगाया जावे। इससे एक और महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट हो जाती है जिसके सम्बन्ध में प्राय: कुछ लोगों में भ्रमोत्पादक विचार उत्पन्न हो गए हैं। वह यह कि भारतवर्ष में कृषि सुधार का प्रश्न एकांगी नहीं है। अतः वह स्वतंत्र रूप से हल भी नहीं हो सकता। देश में कृषि सुधार के लिए उसका उद्योगीकरण भी आवश्यक हो जाता है। जब तक हम नये नये उद्योग धन्धे स्थापित नहीं करते, तब तक आवश्यकता से अधिक खेती में लगे हुए लोगों को वहाँ से हटा-कर अपने जीवन निर्वाह का दूसरा कोई प्रबन्ध करना असम्भव-सा है। अतएव देश के कृषि और धन्धों की उन्नति का प्रश्न एक साथ ही सुलझाया जा सकता है। एक को दूसरे से पृथक रखने का प्रयत्न करना उन प्रश्न के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना है। इस सम्बन्ध में एक बात और है जिसको स्पष्ट कर देना जरूरी है। कुछ लोग सोचते हैं कि भारतवर्ष केवल एक कृषि प्रधान देश है और भविष्य में भी ऐसा बना रहेगा। इस धारणा के पीछे कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। हाँ यह बात ठीक है कि कृषि, देश का प्रमुख धन्धा रहा है और भविष्य में भी रहेगा।

इस सम्बन्ध में १९१८ के औद्योगिक कमीशन की राय उल्लेखनीय है, "उस समय जब कि आधुनिक औद्योगिक बांद

के उद्गम स्थान पश्चिमीय योरप में असभ्य लोग निवास करते थे, हिन्दोस्तान अपने शासकों के धन के लिए, और अपने दस्तकारों की कुशलता और कलापूर्ण हुनर के लिए मशहूर था। और उसके बहुत बाद भी जब कि पश्चिम मे व्यापारी लोग पहले पहल भारतवर्ष में आए यहाँ की औद्योगिक उन्नति किसी भी दशा में योरप के अधिक प्रगतिशील देशों से कम न थी।" अतः यह कहना कि भारतवर्ष कभी औद्योगिक देश रहा ही नहीं भ्रमपूर्ण है। इसमें सत्य का अंश केवल इतना ही है कि कृषि हिन्दुस्तान का सदा से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धंधा रहा है और आगे भी रहेगा। हाँ, आधुनिक उद्योग धंधों का हिन्दुस्तान (जैसा कि औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व संसार के अन्य देशों में भी था) पूर्ण अभाव था।

भूमि पर भार बढ़ने का दूसरा कारण देश की बढ़ती हुई जन संख्या है। सन् १८७२ की मनुष्य गणना के अनुसार भारतवर्ष की जन संख्या बीस करोड़ के लगभग थी। १९४१ में अनुमान किया जाता है कि जन संख्या चालीस करोड़ के लगभग पहुँच जावेगी। इस बढ़ती हुई जन संख्या को अपनी उदर पूर्ति के लिये खेती के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं था। गृह-उद्योग धंधे नष्ट हो चुके थे, आधुनिक उद्योग धंधे इस मन्द गति से स्थापित हुए कि आज भारतवर्ष के सारे कारखानों, खानों,चाय कहवा, रबर और सिनकोना के बागीचों, रेलवे वर्कशापों तथा बन्दरगाहों में देश की केवल एक प्रतिशत जन संख्या काम पा सकी है। इसका परिणाम यह हुआ कि खेती में आवश्यकता से अधिक लोग काम करने लगे। कृषि सुधार के लिये सबसे पहला और मुख्य कार्य यह है कि भूमि के भारी बोझ को हलका किया जाय। इसके लिये देश की औद्योगिक उन्नति करनी होगी। हाँ, देश की परिस्थिति को देखते हुए हमारा औद्योगिक संगठन अन्य

देशों से भिन्न हो सकता है। भूमि सम्बंधी इस मौलिक प्रश्न को समझ लेने के उपरान्त अब अन्य कृषि सम्बंधी समस्याओं को समझ लेना आवश्यक है।

भूमि का छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरा होना—

खेती की सफलता के लिये किसान के पास इतनी जमीन का होना अत्यन्त आवश्यक है कि जिसमें उसकी शक्ति और साधनों के परा पूरा उपयोग होने की पूर्ण सम्भावना हो। भारतवर्ष में एक किसान को कम से कम एक जोड़ी बैल तो रखने ही पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त एक औसत कुटुम्ब में ५ व्यक्तियों का होना भी स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी हालत में खेती में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये एक किसान के पास इतनी जमीन होना आवश्यक है जिसमें एक जोड़ी बैल, और कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के श्रम का पूरा पूरा उपयोग हो सके। जमीन इससे कम है तो किसान अपनी शक्ति और साधनों को पूरा पूरा काम में नहीं ला सकेगा, और अन्य किसी कार्य के अभाव में वे व्यर्थ जावेंगे। इसी प्रकार यदि जमीन आवश्यकता से अधिक होगी तो किसान की शक्ति और साधन भूमि की दृष्टि से कम रहेंगे। परिणाम यह होगा कि उस जमीन से पूरा पूरा लाभ उठाने के लिये जितनी शक्ति और साधनों की आवश्यकता है, उसमें कमी होने से उस जमीन से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही दशाओं में अधिकतम उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः भूमि तथा खेती के अन्य साधनों में एक प्रकार से समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही किसी किसान के अधिकार में केवल उतनी भूमि का होना भर ही काफी नहीं है जितनी कि उसकी शक्ति और साधनों की दृष्टि से आवश्यक है किन्तु जरूरत इस बात की भी है कि

वह जमीन इकट्ठी हो, अलग कई टुकड़ों में बँटी हुई न हो। उदाहरण के लिए यदि हम मानलें कि एक जोड़ी बैल और पाँच व्यक्तियों के एक कुटुम्ब के लिये १० एकड़ जमीन का होना जरूरी है तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यदि किसान के पास एक एक एकड़ के दस टुकड़े हों तो उसकी शक्ति और साधनों का पूरा उपयोग हो सकेगा। इसके लिये १० एकड़ का एक टुकड़ा होना चहिए।

भारतीय किसान के सामने यह सवाल तो कभी आता ही नहीं है कि उसकी शक्ति और साधनों को ध्यान मे रखते हुए उसके पास भूमि अधिक है। यहाँ तो भूमि का अकाल है। किसान के पास आवश्यकता से बहुत कम भुमि है और वह भी छोटे छोटे टुकड़ों में बटी होती है। अस्तु इस प्रश्न को दो पहलू से विचारना होगा (१) भूमि का कम मात्रा में होना और (२) उसका कई टुकड़ों में बँटा होना।

भूमि के अपरियाप्त होने का कारण तो स्पष्ट है। भूमि पर निर्भर रहने वालों की संख्या भयंकर वेग से बढ़ जाने के कारण प्रति किसान के हिस्से में बहुत कम भूमि आती है। भारतवर्ष में प्रति किसान भूमि का औसत ढाई एकड़ है। किन्तु यह ढाई एकड़ भूमि भी एक चक में न होकर छोटे छोटे खण्डों में बंटी होती है। हमें इस बंटवारे के कारणों का जमीन के मालिकों और जमीन पर खेती करने वालों, दोनों की दृष्टियों से विचार करना होगा।

भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त होने के कारण—

पहले हम भूमि के स्वामियों का प्रश्न लेते हैं। ऐसे लोगों का भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटने का कारण यह है कि जब पाश्चात्य देशों की सभ्यता के प्रभाव से हिन्दोस्तान में भी व्यक्ति-

वाद का उदय हुआ तो संयुक्त परिवार की प्रथा नष्ट होने लगी। और इसी कारण भूमि का बंटवारा आवश्यक हो गया। किसान की मृत्यु के उपरान्त यदि उसके चार लड़के हुए तो उसकी ज़मीन के छोटे छोटे चार भाग हो गए। हिन्दू और मुसलमानों के प्रचलित उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार इस बँटवारे को और भी प्रोत्साहन मिला। जनसंख्या के बढ़ने तथा उद्योग-धंधों मे जन संख्या को काम न मिलने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को खेती पर निर्भर होना पड़ा। यदि एक घर मे चार भाई हुए तो चारों को खेती से ही गुजर करनी पड़ती है; इसलिए भी भूमि का बंटवारा आवश्यक हो गया है। भूमि की मांग बढ़ जाने से उसका कई टुकड़ों में विभाजित होना अनिवार्य हो गया।

यदि किसी किसान के पास दस दस एकड़ के चार खेत हों और उसके चार पुत्र एक एक खेत बांट लें तब भी कुशल है। पर ऐसा नहीं होता। प्रत्येक पुत्र प्रत्येक खेत का एक चौथाई टुकड़ा लेता है क्योंकि हर एक खेत की भूमि एक सी नहीं होती। इस प्रकार उस किसान के मरने के उपरान्त चार खेतों के सोलह टुकड़े हो जाते हैं। और हर एक भाई के पास दस एकड़ का एक टुकड़ा न रहकर ढाई ढाई एकड़ के चार छोटे छोटे खेत हो जाते हैं।

अभी तक हमने ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटे जाने और एक व्यक्ति के पास की भूमि के कई जगह बिखरे होने के कारणों का ज़मीन पर हक रखने वालों की दृष्टि से विचार किया है और तत्सबंधी आंकड़ो को देखने से मालूम होगा कि भारतवर्ष की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि बिहार और उड़ीसा में एक व्यक्ति की औसत भूमि आधे एकड़ से भी कम है। आसाम में औसत तीन एकड़ के लगभग है। और संयुक्तप्रान्त में ढाई एकड़ के लगभग है। किन्तु

स्थिति की विषमता का अंदाज इतने से ही नहीं लगाया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति की भूमि कई कई टुकड़ों में बँटी हुई है। पूना जिले के पीपला सौदागर नामक गाँव की जांच का परिणाम डाक्टर मैन के शब्दों में इस प्रकार है, "१५६ व्यक्तियों के पास ७२६ जमीन के टुकड़े थे जिनमें ४६३ एक एकड़ से कम, और २११ चौथाई एकड़ से भी कम थे।"

इस प्रश्न पर हम जमीन पर हक रखने वालों का विचार किये बिना यदि केवल खेती करने वालों की दृष्टि से ही विचार करें तो स्थिति और भयंकर होगी। और इसका कारण स्पष्ट है क्योंकि खेती करने वालों की संख्या जमीन पर अधिकार रखने वालों से अधिक है। खेती के लिये किसानों को एक नहीं कई व्यक्तियों से भूमि किराये पर लेनी होती है। एक व्यक्ति अपनी सारी जमीन एक ही आदमी को प्रायः खेती करने के लिये नहीं देता। जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों में बंटे रहने और बिखरे रहने और बिखरे रहने की समस्या खेती करने वालों की दृष्टि से और भी भयंकर हो जाती है। पंजाब में २२.५ प्रतिशत खेती करने वालों के पास एक एकड़ या उससे भी कम भूमि है। डाक्टर मैन के अनुसार पीपला सौदागर के ६२ प्रतिशत किसानों के टुकड़े एक एकड़ से भी कम हैं।

इस प्रकार भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित होने और एक व्यक्ति के पास की भूमि के कई हिस्सों में बंटे रहने का खेती पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। औसत किसान अपनी शक्ति और साधनों का उचित उपयोग नहीं कर सकता। एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े तक जाने में उसे बहुत समय नष्ट करना पड़ता है, और कोई कोई टुकड़े तो इतने छोटे होते है कि उन पर खेती की ही नही जा सकती। फिर जमीन के अलग अलग टुकड़ों में होने के कारण उनकी देख भाल भी नही कर सकता। बहुत सी जमीन

मेड़ बनाने में व्यर्थ चली जाती है। कभी कभी मेड़ बनाने के मामले में मुकदमे बाजी तक की नौबत आ जाती है। सिंचाई के मामले में भी अड़चन होती है। क्योंकि एक खेत से दूसरे खेत तक नाली से जाने के लिये दूसरे किसान के खेत में से होकर जाना पड़ता है। किसान अपने हर एक टुकड़े पर तो कुआं खोद नहीं सकता। यदि उसके सब टुकड़े एक चक में हों तो वह कुआं खोद कर सिंचाई की समस्या को हल कर सकता है। बिखरे हुए खेतों के कारण किसान अच्छे औजार और यन्त्र काम में नहीं ला सकता क्योंकि वे भारी होते हैं और किसान उन्हें कन्धे पर रख कर एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर नहीं ले जा सकता, और न अन्य कोई सुधार कर सकता है। छोटे छोटे खेतों पर बाड़ लगाने का खर्च भी नहीं किया जा सकता, इस लिए बिना बाड़ के खेती करनी होती है। इसका एक आवश्यक परिणाम यह होता है कि एक किसान अपने पड़ोसी से भिन्न और उन्नत तरीके से खेती नही कर सकता। न उसमें बोई गई वस्तु से भिन्न वस्तु पैदा कर सकता है, क्योंकि पास के खेत में से जानवरों के आने का और खेती के नष्ट करने का भय रहता है। मानलो कि एक किसान देर से पकने वाला गेहूँ बोता है और उसका पड़ोसी शीघ्र पकने वाला। इसका फल यह होगा कि पड़ोसी की फसल पर उसके खेत में से पशु उस किसान की फसल पर भी आक्रमण करें गे। किसान के पास सारी भूमि एक चक में न होने के कारण किसान अन्य देशों की भांति अपने खेत पर मकान बना कर नहीं रहता वरन खेतों से दूर बस्ती में रहता है। वैज्ञानिक ढंग की खेती के लिये किसान का खेत पर रहना आवश्यक है क्योंकि उस दशा में वह हर वक्त खेती की देख भाल कर सकेगा, उसकी स्त्री तथा बच्चे भी पूर्ण रूप से सहायक हो सकेंगे, तथा खाद इत्यादि का पूरा उपयोग हो सकेगा। सारांश यह कि

भूमि का छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरे होना खेतीकी उन्नति में बहुत बाधक है और इसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक और पहली बात है।

भूमि की चकबंदी और भावी विभाजन को रोकने के उपाय—

यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी ज़मीन (जो अभी अलग अलग टुकड़ों मे विभाजित है) के बराबर जमीन का एक ही टुकड़ा दे दिया जावे और आगे से इस बात का प्रबंध कर दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्रफल के बाद जमीन के टुकड़े नहीं किये जा सकेंगे। पहला प्रश्न जमीन के बिखरे हुए टुकड़ों की चक़बन्दी का है और दूसरा भविष्य में जमीन के बँटवारे को रोकने का। मौजूदा टुकड़ों की चकबन्दी दो प्रकार से सम्भव है। सहकारिता के सिद्धान्तो के अनुसार और कानून बनाकर। पहला तरीका पंजाब में बहुत कुछ सफल हुआ है। वे लोग जो कि चकबन्दी के फायदे को स्वीकार करते हैं और उसको कार्य रूप मे परिणित करना चाहते हैं, एक सहकारी चकबन्दी समिति के सदस्य बन जाते हैं। जब उनमें से अधिकांश या अन्य कोई निश्चित संख्या जमीन के नवीन बँटवारे के किसी विशेष तरीके को स्वीकार कर लेतीं है तो फिर प्रत्येक सदस्य को उसकी अलग अलग बँटी हुई जमीन के बजाय एक ही चकमें सारी जमीन दे दी जाती है। जमीन का नवीन बँटवारा करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उस बँटवारे के प्रति किसी भी व्यक्ति को कोई शिकायत न रहे। यह तरीका उन्ही लोगों के लिए काम मे लाया जा सकता है जो कि स्वयं जमीन के मालिक हैं अथवा मालिक नही तो भूमि मे स्वामित्व का हक तो अवश्य रखते है। इस प्रकार से चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयां उपस्थित होती है और प्रगति भी बहुत धीरे

धीरे होती है। यदि एक भी व्यक्ति को किसी प्रकार की शिकायत होती है तो प्रायः सारा काम रुक जाता है। क्योंकि यद्यपि समिति के नियमानुसार बहुमत होने पर किसी भी योजना के अनुसार बँटवारा किया जा सकता हो, किन्तु प्रयत्न यही किया जाता है कि सबों की सलाह से ही चकबन्दी हो। चकबन्दी का यह तरीका केवल एक व्यक्ति को उसके अलग अलग टुकड़ों के बजाय एक चक में भूमि देने के उद्देश्य से काम में लाया जाता है। चकबन्दी मे यह प्रयत्न किया जाता है कि एक किसान को एक ही स्थान पर उसकी भूमि के बराबर जमीन दे दी जावे। इसका अर्थ यह हुआ कि एक किसान के टुकड़ों का दूसरे किसानों के टुकड़ों से परिवर्तन किया जावे। मान लो "अ" किसान के एक टुकड़े के पास "क" "ख" और "ग" के टुकड़े हैं। चकबन्दी की योजना के अनुसार "अ" को क ख ग के टुकड़े दे दिए जावेंगे और "क" "ख" "ग" को "अ" के वे टुकड़े जो उनके किसी खेत के समीप हैं एवज में दे दिए जावेंगे। इस प्रकार टुकड़ों का परिवर्तन करने से हर एक के पास उसकी सारी भूमि जो टुकड़ों में बँटी हुई थी, एक चक में हो जावेगी। यह ध्यान में रखने की बात है कि इस प्रकार चकबन्दी करने से वर्तमान बिखरे हुए खेतो की समस्या तो हल हो जावेगी, किन्तु भविष्य में उनका पुनः विभाजन न रोका जा सकेगा। इन सब बातों पर विचार करते हुए अधिकतर मत इस पक्ष में है कि बिना कानून की सहायता लिए न तो चकबन्दी आन्दोलन अधिक सफल हो सकता है और न भावी विभाजन रोका जा सकता है। पंजाब में प्रति वर्ष लगभग एक लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी सहकारी समितियों के द्वारा हो जाती है। परन्तु वहाँ भी कार्य कर्ताओं को यह अनुभव होने लगा कि जब तक ऐसा कानून न बना दिया जावे कि यदि तीन-चौथाई सदस्य चकबन्दी की योजना

को स्वीकार कर ले तो शेष को उसे मानना ही होगा. तब तक चकबन्दी आन्दोलन अधिक तेजी से नही चल सकता। संयुक्त प्रान्त, बड़ौदा और काश्मीर में सहकारी समितियों के द्वारा कहीं-कही चकबन्दी की जा रही है। मध्य प्रांत में सरकार ने एक कानून बनाकर चकबंदी कराने की सुविधा प्रदान करदी है। वहाँ कानून के अनुसार गाँव के कम से कम दो मालगुजार जिनके पास गाँव की एक निश्चित भूमि हो चकबंदी के लिए अर्जी दे सकते है। सरकारी कर्मचारी (चकबंदी आफिसर) चकबंदी की एक योजना तैयार करेगा। यदि गाँव के आधे मालगुजार जिनके पास गाँव की कम से कम दो तिहाई भूमि हो, उस योजना को स्वीकार करें तो अल्पमत को वह योजना माननी ही होगी और चकबंदी कर दी जायेगी।

चकबदी से किसी को हानि नही पहुँचती। हर एक व्यक्ति को अपनी सारी भूमि (जो टुकड़ों में बटी है) एक चक या अधिक से अधिक दो चकों में मिल जाती है। भूमि की उपजाऊ शक्ति, खेतों पर पेड़, तथा कुओं का भी योजना बनाते समय ध्यान रक्खा जाता है। प्रयत्न तो यह किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को भूमि वैसी ही मिले जैसी कि उसकी थी, कुओं और पेड़ों के लिए उनके मालिक को क्षति पूर्ति के स्वरूप रकम दिलवा दी जाती है। उदाहरण के लिए "अ" का एक खेत "ब" के पास चला जावे और उसमें एक कुआँ हो तो कुएं की लागत "अ" को दिलवा दी जाएगी। इसके अतिरिक्त चकबंदी से एक बड़ा लाभ यह होता है कि मेड़ों के कम हो जाने से जमीन बच रहती है जिसका उपयोग खेतों में जाने के लिए रास्ते बनाने के लिए किया जाता है। जहाँ जहाँ चकबंदी हो गई है, वहाँ वहाँ किसानों ने सिंचाई के लिए अधिकाधिक कुयें खोदे हैं क्योंकि अब किसान एक ही कुये से अपनी सारी जमीन की सिंचाई कर

सकता है। कहीं कहीं किसान चकबंदी के उपरान्त अपने खेत पर ही रहने लगा है जो कि खेती की उन्नति के लिए आवश्यक है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि जहाँ जहाँ चकबंदी हो चुकी है, वहाँ खेती की दशा सुधर रही है। यह तो मानी हुई बात है कि जब तक बिखरे हुए खेतों की चकबंदी नहीं की जाती, खेती की उन्नति नहीं हो सकती।

चकबंदी में बहुत सी अड़चनें होती हैं। गाँव के लोग रुढ़िवाद में फंसे होते हैं। वे अपने बाप-दादाओं की भूमि को छोड़ना नहीं चाहते। गाँव का पटवारी छिपे-छिपे चकबंदी का विरोध करता है, और कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनका एक आध टुकड़ा ही गांव में होता है। वे समझते हैं कि उन्हें तो चकबंदी से कोई लाभ न होगा क्योंकि उनके पास तो केवल एक ही टुकड़ा है। ऐसी दशा में वे अपने टुकड़े को बदलना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त भूमि की विभिन्नता, तथा उनपर कुयें और पेड़ होने के कारण उनका मूल्य निर्धारित करने में मतभेद होता है। सहकारी समितियों के द्वारा चकबंदी करने में कभी महीनों का परिश्रम कुछ थोड़े से व्यक्तियों के विरोध करने के कारण व्यर्थ चला जाता है। साथ ही अल्पमत वालों को नये बंटवारे को मनाने के लिये विवश करने में इस आन्दोलन का विरोध होने की सम्भावना है। हिन्दुस्तान में भूमि मनुष्य के लिये अत्यन्त मूल्यवान और पवित्र वस्तु है। इस कारण कानून बन जाने पर भी प्रयत्न यही करना चाहिए कि सब लोग नये बंटवारे को मानलें।

किन्तु चकबंदी कर देने से भविष्य में उसके फिर टुकड़े टुकड़े होकर बंट जाने की सम्भावना तो बनी ही रहती है। भविष्य में भूमि के टुकड़े न हों, इसके लिए सरकार को कानून बना कर

उत्तराधिकार के नियमों में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी जो कि अधिकांश जन-संख्या को मान्य न होगी। यदि यह कानून बना दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्र फल के नीचे भूमि का बंटवारा न हो सके तो यदि बड़ा भाई भूमि को जोते तो दूसरे भाई क्या करेंगे ? जब तक कि उद्योग-धंधों की उन्नति न हो जाय जिससे अन्य भाइयों को उनमें काम मिल सके तब तक उत्तराधिकार के नियमों में परिवर्तन करना कठिन है। पंजाबी केनाल कालोनियों (नहर कालोनी) मे भूमि इस शर्त पर दी गई है कि भूमि का बंटवारा नहीं हो सकता, किन्तु वहाँ एक भाई के द्वारा दूसरे भाई को मार डालने की घटनाएं आए दिन होती रहती हैं। जब तक कि उन लोगों के लिए जो कि इस कानून के द्वारा भूमि पाने से वंचित रह जावेंगे कोई काम नहीं दिलाया जा सकता तब तक भूमि का बंटवारा रुकना कठिन है। बम्बई में एक बार इस आशय का एक बिल उपस्थित किया गया था कि एक "स्टैंडर्ड-यूनिट" खेत का निर्धारित कर दिया जाय जिसमें लाभ पूर्वक खेती की जासके और इस बात का भी प्रबंध हो कि कोई भी खेत उस यूनिट से कम न हो। भविष्य में किसी "स्टैन्डर्डयूनिट" से छोटे टुकड़े में खेती न की जाय इसका भी प्रबन्ध कर दिया था। बिल के दूसरे भाग में मौजूदा बिखरे हुए टुकड़ों की चकबंदी की व्यवस्था की गई थी। किन्तु इस बिल का प्रान्त मे ऐसा घोर विरोध हुआ कि सरकार को विवश होकर उसे वापस लेना पड़ा। इस प्रकार का कानून जनता तभी स्वीकार कर सकती है जबकि सरकार भूमि से हटने वालों को काम दिलाने की भी आयोजना करे। यह बात अवश्य है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने के लिए कानून का सहारा लेना ही पड़ेगा। संसार के अन्य देशों को भी इस समस्या का सामना करना पड़ा था और अनुभव यह बतलाता है कि बिना कानून

बनायें यह समस्या हल नहीं हो सकती। अतएव यदि हिन्दुस्तान को भी कानून का सहारा लेना पड़े तो आश्चर्य नहीं है।

वर्तमान परिस्थिति में इस प्रश्न को हल करने का मार्ग सहकारी कृषि भी है। इटली में इस प्रयोग को यथेष्ट सफलता मिली है, और रूस में तो जिस सफलता से सामूहिक खेती की जा रही है, वह अवश्य ही आश्चर्यजनक है। किसान लोग एक सहकारी समिति के सदस्य बन जाते है और या यह लोग अपनी अपनी जमीन तथा हल इत्यादि समिति को सौंप देते हैं और फिर मिलकर सारी जमीन पर खेती करते हैं तथा बाद में पैदावार आपस में बाँट लेते है। अथवा प्रत्येक किसान को समिति उसकी आवश्यकता का ध्यान रखते हुए खेती के लिए भूमि देती है। समिति भूमि के स्वामियों से भूमि पट्टे पर ले लेती है और अपने सदस्यों को दे देती है। ऐसी समितियों के वे ही लोग सदस्य होते हैं जिनके पास जमीन नहीं होती। सदस्य भूमि पर स्वयं खेती करता है। समिति अपने सदस्यों के लिए कीमती औजार, अच्छे बीज और खाद इत्यादि का प्रबन्ध करती है।

स्थायी सुधारों का प्रश्न—

भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में बंटे होने के अतिरिक्त खेतों में स्थायी सुधारों का अभाव भी खेती की अवनति का मुख्य कारण है। उदाहरण के तौर पर अधिकतर खेतो के चारों ओर कोई बाड़ नही होतीं जिसके अभाव में फसल को जानवरों से बहुत हानि पहुँचती है। इस मामले में पास के खेत वालो से बराबर झगड़े होते हैं और फसल की रखवारी करने मे बहुत असुविधा होती है। खेतों में मेड़ों का भी पूर्ण अभाव है जिससे किसान को काफी नुकसान होता है। सिंचाई का उचित प्रबन्ध नहीं होता।

परिणाम स्वरूप कई स्थानों में पानी इकट्ठा हो जाता है और उसको बहाने के लिये दूसरे की जमीन पर से उसका गुजरना जरूरी होता है, जिससे उस जमीन को भी नुकसान पहुँचता है। और सब से अधिक खटकने वाली बात खेतों पर मकानों का न होना है। इसका फल यह होता है कि किसान अपने पशु अपने घर पर रखता है और इससे बहुत-सी खाद व्यर्थ फिंक जाती है। किसान को भी खेतों की देख-भाल करने में बहुत असुविधा होती है। यदि ऊपर बताई हुई कमियों को हम ध्यान से देखें तो हमें ज्ञात होगा कि उनमें से कतिपय मुख्य २ तब तक नही हो सकते जब तक किसान के पास भूमि एक चक में न हो। उदाहरण के लिये खेतों की बाड़ बनाना, सिंचाई के लिये कुआँ खोदना, अपने खेत पर ही मकान बना कर रहना इत्यादि। किन्तु यह सब सुधार केवल चकबंदी होते ही नहीं हो जावेंगे। चकबन्दी का आवश्यक परिणाम यह होगा कि किसान वे सुधार जोकि वह स्वयं कर सकता है तुरन्त ही कर लेगा और उनके फलस्वरूप जैसे जैसे उसकी आर्थिक स्थिति सुधरती जावेगी वैसे ही वैसे वह अन्य स्थायी सुधार कर सकेगा।

भारतीय किसान—

भारत में खेती बारी का धन्धा पनप नहीं रहा है, उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, इसका मुख्य कारण बहुत से लोग जो वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ हैं, किसान को मानते हैं। भारतीय किसान को मूर्ख, धन्धों के विषय में कुछ भी न जानने वाला, और अत्यन्त रुढ़िवादी कहने की तो भारतवर्ष में परिपाटी चल पड़ी है। आरम्भ में कृषि विभाग भी समझता था कि भारतीय किसान खेती करना ही नहीं जानता। किन्तु सर्वप्रथम कृषि विशेषज्ञ डाक्टर वोयल्कर महोदय ने इस भ्रम की ओर संकेत

किया। उन्होंने किसान की प्रशंसा करते हुए कहा था कि "भारतीय किसान खेती के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान रखता है और जिन विपरीत परिस्थितियों में उसको अपना धन्धा चलाना पड़ रहा है उनको देखते हुए वह एक श्रेष्ट किसान है"। अब तो क्रमशः कृषि विभाग के अधिकारी भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि भारतीय किसान को साधारणतः खेती बारी के सम्बन्ध में सीखना नहीं है। हां वैज्ञानिक खेती के लिये उसे कुछ नई बातें अवश्य सीखनी होंगी। बात यह है कि भारतीय किसान के पास जो हजारों वर्षों का खेती बारी का अनुभव सुरक्षित है वह वैज्ञानिक दृष्टि से भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। उत्तम बीज, खाद, हल-बैल, गहरी जुताई और चकबन्दी के लाभ वह न जानता हो यह बात नहीं है, किन्तु जिस निर्धनता और उपेक्षा के वातावरण में वह जीवन व्यतीत कर रहा है उसमें रह कर वह खेती की उन्नति कर ही नहीं सकता। किसान पर ऋण का भयंकर बोझ लदा हुआ है, जो कुछ वह खेत पर पैदा करता है उसका अधिकांश भाग महाजन के पास चला जाता है। ऊपर से जमींदार, रेवेन्यू विभाग, तथा पुलिस कर्मचारियों के अनवरत शोषण के कारण उसकी दशा इतनी शोचनीय हो गई है कि किसान के हृदय में अपनी स्थिति को सुधारने का उत्साह ही नहीं होता। जिन विषम परिस्थितियों में किसान रह रहा है वे उसको निराशावादी बना देने के लिए बहुत काफी हैं। और ऐसी दशा में जिस सहनशीलता और लगन का आज भी वह परिचय देता है वह न केवल सराहनीय है किन्तु इस बात का द्योतक भी है कि पूर्ण सुविधाओं के प्राप्त होने पर भारतवर्ष ।का किसान भी उतना ही सफल कृषक हो सकता है जितना कि अन्य किसी देश का। फिर भी उसकी कार्यक्षमता में विश्वास रखते हुए तथा आवश्यक सुविधाओं के प्राप्त होने पर

वह एक कुशल किसान बन सकता है। इस बात को मानते हुए भी आज उसमें पाई जाने वाली कमियों की ओर से उदासीन नहीं रहा जा सकता, और न उसकी अवहेलना करना भावी प्रगति के लिए हितकर हो सकता है।

यह बात सर्वविदित है कि आज हिन्दुस्तान का किसान सर्वथा अशिक्षित है। उसके खेती करने का ढंग अत्यन्त पुराना और अवैज्ञानिक है। उसकी सामाजिक रुढ़िवादिता उसके आर्थिक हित की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर है। उसकी भाग्यवादी मनोवृत्ति, जो उसकी वर्तमान दशा का जितना कारण है, उतना परिणाम भी; तथा उसका आलस्य प्रत्येक नवीन सुधार के मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं। सफाई की ओर उसका ध्यान सर्वथा नहीं के बराबर होता है, जिसके फलस्वरूप वह अनेकों रोगों का शिकार बन जाता है, तथा उनसे ग्रसित होकर अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर लेता है। फलतः उसकी कार्य करने की शक्ति में बहुत कमी आ जाती है। अज्ञानता के वश वह बीमारी की हालत में सुविधा मिलने पर भी औषधि की अपेक्षा मंत्र तथा तावीज में अधिक विश्वास रखता है और उसमें रुपया नष्ट कर देता है। जीवन को वह एक भार रूप मानकर चलता है और उसमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के भावों का बिल्कुल अभाव है। अतः हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भारतीय किसान में बहुत-सी बातों की कमी है और उसको एक आदर्श कृषक बनाने के लिये उन सब कमियों को निकाल फेंकना होगा। यह तभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षा और प्रचार द्वारा उसकी वर्तमान संतोषी मनोवृति में आमूल परिवर्तन करके उसमें मौजूदा हालत के प्रति न केवल असंतोष की भावना उत्पन्न कर दी जावे वरन् उसमें आत्मविश्वास का उदय और स्थिति को सुधारने की अपनी क्षमता में भरोसा पैदा होना भी आवश्यक है।

साधारण शिक्षा—

भारतयीं किसान कीं मनोदशा में उपरोक्त परिवर्तन करने के लिए उसे शिक्षित बनाना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे गाँवों में शिक्षा की आज कितनी कमी है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि देश में प्रत्येक सौ व्यक्तियों में से केवल छः व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी एक भाषा को साधारणतया लिख और पढ़ सकते हैं। अतः आज देश की ग्रामीण जनता को, जिमें अधिकाँश भाग किसानों का ही है शिक्षित बनाने के लिए एक वृहत्, शिक्षा योजना की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु देश की विदेशी हुकूमत ने आज तक इतने महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर से उदासीनता प्रकट की है। और जिस प्रकार की शिक्षा का उन्होंने प्रचार किया, उसका प्रभाव देश के लिए बुरा ही हुआ है। इस लिए वह इस योग्य नहीं है कि उसका हमारे किसानों में भी प्रचार किया जा सके। मौजूदा शिक्षा प्रणाली का इस दृष्टि से सब से बड़ा दोष यह है कि वह हमारे नवयुवकों में दास मनोवृत्ति का उदय कर देती है, उनके मस्तिष्क और रुचि को शारीरिक श्रम के प्रतिकूल बना देती है। उनके अन्त में वे सिवाय क्लकों के और किसी योग्य नहीं रह जाते। अस्तु हमारे किसानों को उचित शिक्षा देने के लिये वर्तमान शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन करना होगा। ग्रामीण स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा ऐसी होना चाहिए जिसके फल स्वरूप विद्यार्थियों में कृषि से दिलचस्पी और ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सके। आज की तरह उनमें शारीरिक श्रम से घृणा, और अपने को थोड़ी सी शिक्षा पा लेने पर बहुत ऊँचे समझने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो, इस बात का उचित प्रबन्ध होना जरूरी है। हाल में देश के एक मात्र चौकीदार महात्मा गाँधी की प्रेरणा के अनुसार विभिन्न काँग्रेसी प्रान्तों में सर्वसाधारण की शिक्षा के लिए जो नवीन योजना के

अनुसार कार्य करने का प्रयत्न किया जा रहा है उस से देश को बहुत कुछ लाभ पहुँचने की आशा की जा सकती है। इस योजना के अनुसार—जो वर्धा शिक्षा प्रणाली के नाम से देश भर में मशहूर हो चुकी है, शिक्षा का माध्यम हिन्दुतानी होगा, और इसका आधार कोई न कोई दस्तकारी का काम होगा ,जो प्रत्येक विद्यार्थी को सिखाना आवश्यक होगा और जिसको केन्द्रीभूत बनाकर अन्य सब विषयों की शिक्षा दी जावेगी। अतः दस्तकारी चुनते समय इस बात का ध्यान रखना लाजमी होगा कि उसमें शिक्षादायिनी शक्ति (Educative possiblities) यथेष्ट मात्रा में उपस्थित हो। कृषि, कताई और बुनाई, बागबानी आदि ऐसे काम हैं जो इस प्रकार की शिक्षा के लिए काम में लिए जा सकेंगे। इस प्रकार मौजूदा किताबी शिक्षा प्रचार से होने वाली हानियों से देश को मुक्ति मिल सकेगी। कांग्रेसी प्रान्तों में शिक्षा प्रचार संबंधी किए जाने वाले प्रयत्नों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि एक राष्ट्रीय सरकार, चाहे फिर उसकी शक्ति कितनी ही सीमित क्यों न हो, विदेशी सरकार की तरह देश के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर से किसी भी दशा में उदासीन नहीं रह सकती। देश में फैली हुई महान अज्ञानता को दूर करने का एक मात्र उपाय यही है कि देश की सरकार शिक्षा प्रचार की एक वृहत् योजना तैयार करे और साहस के साथ उसको कार्य रूप में परिणत करे। संसार के दूसरे देशों के ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ कि राज्य ने अशिक्षा और अज्ञान का अन्त करने में बहुत जल्दी सफलता प्राप्त की है। रूस इस दशा में भारतवर्ष का पथ प्रदर्शन कर सकता है। गाँवों में फैली हुई अशिक्षा को दूर करने में सहकारिता आन्दोलन से भी कुछ सफलता मिल सकती है। भारतवर्ष में पंजाब की शिक्षा-समितियों को इस सम्वन्ध में यथेष्ट सफलता मिली है।

हमारे किसानों की शिक्षा का सवाल केवल उनके बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जावे, यहीं तक ही सीमित नहीं है। यह भी आवश्यक है कि लड़कों और लड़कियों के अतिरिक्त बड़े आदमियों को भी शिक्षित बनाया जावे। यह रात्रि पाठशालाओं के संगठन द्वारा सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है और इस कार्य को सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार अधिक सुचारू रूप से चलाया जा सकता है। बालिग सहकारी-शिक्षा-समितियों ने पंजाब में जो सफलता प्राप्त की है वह अनुकरणीय है। गांवों में जगह-जगह वाचनालयों और भ्रमण करने वाले पुस्तकालयों की स्थापना भी शिक्षा प्रचार में सहायक हो सकती है। जहाँ तक बड़े-बड़े आदमियों में अशिक्षा और अज्ञान के अन्त करने का सवाल है नियमित रूप से दी जाने वाली स्कूली शिक्षा की अपेक्षा छाया चित्रों (Magic lantern) और रेडियो तथा सिनेमा द्वारा समय-समय पर दी गई शिक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

अब तक जो कुछ लिखा जा चुका है वह विशेष रूप से ऐसे किसानों को ध्यान में रख कर ही लिखा गया है जो जिस ज़मीन पर खेती करते हैं, स्वयं इसके मालिक भी हैं। किन्तु हमारे देश में एक संख्या ऐसे लोगों की भी उत्पन्न हो गई है, और उनमें दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है जिनके पास अपनी निजी कोई भूमि नहीं होती, वे तो केवल मज़दूरी पर दूसरे लोगों के खेतों पर काम करके अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। इन लोगों की स्थिति और भी शोचनीय है। उनमें भी वे सब कमी पाई जाती हैं जो कि किसानों के विषय में ऊपर बताई जा चुकी हैं, और उनके सुधार के लिये वे ही सब उपाय काम में लाए जा सकते हैं जो दूसरे किसानों के लिए बतलाये गए हैं।

स्वास्थ्य—

भारतीय किसान की कमजोरी केवल इतनी ही नहीं है कि वह अशिक्षित है और उसके कारण अनेक सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्य बुराइयों का वह शिकार बना हुआ है। उसकी शारीरिक दशा भी अत्यन्त कमजोर होती है और मलेरिया, प्लेग, हैजा, पेचिश, काला अजार, हुकवार्म तथा अन्य कई छोटी-छोटी बीमारियों से वह सदा घिरा रहता है। परिणाम यह होता है कि उसमें कार्य-शक्ति का बहुत अभाव हो जाता है और उनमें से कुछ बीमारियाँ तो ऐसी है जो उसी वक्त ज्यादा तर होती हैं जब कि किसानों को खेतों पर अधिक काम करने की आवश्यकता होती है। इन बीमारियों से पीड़ित होकर लाखों की संख्या में तन्दुरुस्त लोग मृत्यु के मुंह में चले जाते हैं, बहुतों की कार्य शक्ति सदा के लिये क्षीण हो जाती है। बीमारी के बाद प्रायः लोग उत्साहहीन और निराशावादी हो जाते हैं। ग्रामीण जनता के बीमारियों से घिरे रहने के कारणों और उनके उपाय के संबन्ध में विस्तारपूर्वक विचार एक पृथक परिच्छेद में किया जावेगा। यहाँ तो इतना संकेत कर देना भर ही काफी होगा कि चिकित्सा की सुविधाओं के अभाव, स्वास्थ्य और सफाई के नियमों के प्रति अज्ञानपूर्ण अवहेलना ही इस हानिकर स्थिति के कारण है।

कृषि संबंधी शिक्षा—

अब तक हमने केवल इस सम्बंध में विचार किया है कि भारतीय किसान को एक कुशल और कार्य करने वाला व्यक्ति बनाने के लिए शिक्षा आदि की कितनी आवश्यकता है। हमने संक्षेप में उन उपायों का विचार किया है जिनके द्वारा उनकी मानसिक और शारीरिक उन्नति हो सकती है। किन्तु कृषि की

सफलता के लिये केवल इतना ही यथेष्ठ नहीं है कि वह एक कार्य साधक (effecient) व्यक्ति हो, इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि उसको कृषि सम्बन्धी टेकनिकल ज्ञान भी काफी हो। भारतीय किसान को खेती सम्बन्धी जो कुछ भी ज्ञान होता है वह किसी सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से दी गई शिक्षा का परिणाम नहीं होता, अनुभव और संगति से जितना संभव हो सकता है उसके पास तो आज उतना ही ज्ञान है। खेती के लिये जमीन को किस प्रकार तैयार करना चाहिये, उसमें क्या-क्या खाद किस किस वस्तु की पैदावार के लिये देना उपयोगी होगा। कौनसा बीज उत्तम होता है, किन औजारों से किस प्रकार काम लेना चाहिये, बीज किस प्रकार बोना चाहिये, घासफूस को कब और कैसे साफ करना चाहिए। और फसल किस प्रकार काटना चाहिए आदि आदि कुछ ऐसी टेकानिकलाँ, बातें हैं जिनके सम्बंध में किसानों को शिक्षा की पूरी आवश्यकता है। ज़मीन की उत्पादक शक्ति कम न हो इस के लिए इस बात का ध्यान रखना भी जरूरी है कि किस चीज़ के बाद कौन सी चीज खेत में बोना चाहिए ताकि ज़मीन में किसी प्रकार की खराबी न आ सके। संक्षेप में किसान को खेती सम्बन्धी 'टेकनिकल' ज्ञान प्राप्त हो सके, इसकी उचित व्यवस्था की पूरी ज़रूरत है। इस आवश्यकता को पूरी करने का एक साधन यह है कि ग्रामीण मिडिल स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा में कृषि शिक्षा को भी उचित स्थान दिया जावे। प्रत्येक स्कूल के पास एक छोटा सा बाग़ या एक बड़ा फार्म भी होना ज़रूरी है कि जिससे विद्यार्थियों को कृषि संबंधी पूरा पूरा व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त हो सके। इन स्कूलों के अतिरिक्त विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए कृषि कालिजों की स्थापना होना आवश्यक है। इस समय हिन्दुस्तान में छः कृषि-कालिज कार्य कर रहे हैं। हाई स्कूलों में भी कृषि एक

ऐच्छिक विषय होना चाहिए। इस प्रकार किसानों के लड़कों को कृषि संबंधी वैज्ञानिक शिक्षा भी साधारण शिक्षा के साथ-साथ प्राप्त हो सकेगी। किन्तु वे लोग जो इस समय खेती में लगे हुये हैं, उनको इससे भी कोई लाभ नहीं हो सकता। ऐसे लोगों के लाभ के लिए तो इस बात की आवश्यकता है कि स्थान-स्थान पर डिमोन्स्ट्रेशन फार्म और डिमोन्स्ट्रेशन प्लाट स्थापित किये जावें जहाँ पर कि किसानों को कृषि करने के वैज्ञानिक तरीकों का ज्ञान कराया जा सके। इस संबंध में विचार करते हुए कृषि-कमीशन ने अपनी राय इस प्रकार दी थी "लगभग इस विषय में एक राय है कि किसान को प्रभावित करने का सबसे अच्छा और सीधा उपाय उसके खेत के एक छोटे से टुकड़े पर कृषि विभाग की देख रेख मे उत्तम ढंग से खेती करके उसकी उपयोगिता किसान को समझा देना है"। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि किसान अपने ही खेत पर उन उत्तम तरीकों को काम में लेते हुये देखता है जिससे उसे विश्वास हो जाता है कि वह स्वयं भी उनसे लाभ उठा सकता है। इस दृष्टि से 'डिमोन्स्ट्रेशन फार्म' जो कि सरकार ही स्थान-स्थान पर स्थापित कर सकती है और जहाँ खेती का काम एक बड़े पैमाने पर अधिक खर्चीले ढंग से किया जाता है, इतने लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकते। पहली बात तो यही है कि उन फार्मों से वे ही लोग लाभ उठा सकेंगे जो कि उनके आस-पास में रहते हों, दूर के किसानों के लिए वहाँ जाना और उनसे लाभ उठाना तनिक कठिन है। न यही सम्भव है कि हरएक गांव में या दो चार गांवों के बीच में एक डिमान्स्ट्रेशन फार्म स्थापित किया जा सके। दूसरी बात यह है कि वहाँ के खर्चे और बड़े पैमाने पर होने वाले काम को देख कर तथा उनकी विशेष सुविधाओं का ध्यान रखते हुये किसान को यह विश्वास नहीं होता कि जो तरीक़े वहां पर काम

में लाये जा रहे हैं वे चाहे कितने ही लाभदायक हों उसके लिये उपयोगी हों भी सकते हैं। अपनी परिस्थितियों और सुविधाओं को देख कर वह उनको अपने लिए व्यावहारिक नहीं मानता। फिर भी कुछ ऐसे कार्य अवश्य हैं जिनके लिए डिमोंन्स्ट्रेशन फार्म ही जरूरी हो जाते हैं। डिमोन्स्ट्रेशन फार्म का एक अच्छा उपयोग किया जा सकता है। वहाँ पर किसानों को कुछ बातों की शिक्षा दी जा सकती है, जिससे उनको अवश्य लाभ हो सकता है। जैसे अच्छे-अच्छे औजारों को कैसे काम में लाना चाहिए, छोटी-मोटी खराबी होने पर उनको कैसे सुधारना चाहिए, आदि बातें किसानों को डिमोन्स्ट्रेशन फार्म पर बतलाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त साल में एक बार कृषि प्रदर्शिनी द्वारा किसानों को अच्छी-अच्छी मशीनरी और औजारों को काम में लाने का ज्ञान, तथा अच्छे जानवरों और पैदावार का प्रदर्शन भी कराया जा सकता है। सिनेमा और छाया चित्रों द्वारा काफी प्रचार हो सकता है। किन्तु सिनेमा द्वारा ऐसी फिल्म दिखाना ही किसान के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता है जो कि औसत किसान की मनोदशा और ग्रामीण जीवन से पूर्णतया मेल खाती हो। इस संबंध में दो बातों का ध्यान रखना और आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि प्रचार कार्य केवल कुछ चुने हुये स्थानों में ही किया जावे और अधिक शक्ति उन्हीं में लगाई जावे ताकि उस कार्य में सफलता मिले। एक स्थान में सफलता मिलने पर दूसरे स्थानों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यदि इसके विरुद्ध प्रचार कार्य कई स्थानों पर किया जावे और पूरी शक्ति किसी भी स्थान पर न लग सके तो सारी शक्ति के अपव्यय होने की सम्भावना हो सकती है। दूसरी ध्यान रखने की बात यह है कि प्रचार के लिए बहुत से विषय एक ही साथ नहीं लेने चाहिए। केवल कुछ बातों को लेकर उनका पूरा-पूरा प्रचार होना आवश्यक है, जिससे

लोगों को उनकी उपयोगिता में संदेह न रहे। संक्षेप में प्रचार कार्य जितना भी हो बिल्कुल ठोस होना चाहिए और यह प्रलोभन सामने नहीं रखना चाहिए कि एक ही साथ बहुत से स्थानों मे बहुत सा काम कर लिया जावे।

साधन और सुविधाएं—

कृषि के प्रश्न को समझने और सुलझाने के लिए तीसरी आवश्यक बात उन तमाम सुविधाओं के संबंध में विचार करना है जो कृषि की सफलता के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। यह समझना कठिन नहीं है कि किसान के पास आवश्यक मात्रा में भूमि और उसको कृषि संबंधी आवश्यक ज्ञान होने पर भी वह अपने कार्य में उस समय तक सफल नहीं होगा जब तक कि उसके पास अन्य सुविधाएं भी उपस्थित न हों। यदि उसकी ज़मीन को पानी की आवश्यकता है तो सिंचाई का उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है। इसके अलावा खाद, औज़ार, बीज, अच्छे बैल, तथा आवश्यक मात्रा में पूंजी का होना भी अत्यन्त ज़रूरी है। हमें इनमे से प्रत्येक के विषय में विचार कर लेना आवश्यक है।

सिंचाई—

सबसे पहले सिंचाई के प्रश्न को ही लीजिए। हिन्दुस्तान में कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता इसलिए है कि बहुत से प्रदेश तो ऐसे है जहाँ पानी या तो बिलकुल नहीं बरसता या बहुत कम बरसता है, और जिन स्थानों में वर्षा होती है वहाँ भी, वर्षा एक ऋतु विशेष में होने के कारण, अन्य ऋतुओं में सिंचाई की आवश्यकता होती है। कुछ फसल, जैसे चावल और गन्ना, ऐसी हैं जिनको हमेशा और काफी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है जिसका बिना सिंचाई के प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। अतः यह निर्विवाद है कि हमारी कृषि के लिए सिंचाई का उचित

प्रबंध होना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतवर्ष मे सिंचाई के तीन प्रमुख साधन है, नहरें, कुएँ और तालाब। इनमें से नहरों द्वारा सिचाई सब से अधिक होती है और सरकार द्वारा भी इनको यथेष्ट प्रोत्साहन मिलता रहा है। पंजाब, सिंध, और संयुक्त प्रान्त में नहरों की बहुतायत है। नहरों के बाद दूसरा नम्बर कुओं का आता है। संयुक्त-प्रान्त, मद्रास, बम्बई, पंजाब तथा राजपूताना में कुओं द्वारा सिचाई अधिक होती है। दक्षिण भारत, मध्य-प्रान्त, और विशेष कर मद्रास प्रान्त में तालाब अधिक पाए जाते हैं। सन् १९३२-३३ में बर्मा रहित ब्रिटिश भारत में कुल ४८४ लाख एकड़ भूमि सींची गई थी, जब कि संपूर्ण जोती हुई भूमि का क्षेत्रफल २०, ८९ लाख एकड़ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि १,६२५ लाख एकड़ अर्थात ७५ प्रति-शत जोती हुई भूमि बिना सिंची हुई है और उसकी पानी सम्बन्धी आवश्यकता केवल वर्षा से ही पूरी होती है। भारतवर्ष में वर्षा जितनी अनिश्चित और कहीं कहीं इतनी कम होती है, कि उसका विचार करने से यह समझ लेना कठिन नहीं है कि सिचाई की हमारे देश में बहुत कमी है। दक्षिण, मालवा, गुजरात, मध्यप्रान्त, सिन्ध, और राजपूताने के अनिश्चित वर्षा वाले इलाकों में तो विशेष रूप से यह कमी पूरी होना आवश्यक है। जिन प्रदेशों में वर्षा की कमी हो और सिचाई का भी कोई प्रबन्ध होना सम्भव न हो, वहाँ बिना सिंचाई की खेती (सूखी खेती) "ड्राई फ़ार्मिङ्ग" का प्रचार होना चाहिए। इसका अमेरिका में विशेष रूप से प्रचार है। इस रीति के अनुसार किसान वर्षा ऋतु में ही खेत इस प्रकार तैयार कर लेते हैं कि उनके नीचे काफ़ी जल रहता है और जिस भूमि पर बारह इञ्च भी वर्षा होती हो वहाँ खेती की जा सकती है। भारत

वर्ष में भी इसके प्रचार से लाभ हो सकता है।

जिन प्रान्तों में नहरों द्वारा सिंचाई होती है वहाँ पानी के एक स्थान पर जमा हो जाने और खेतों में खार (Salt) उत्पन्न हो जाने का भय रहता है और इनके कारण कई स्थानों मे भूमि अन उपजाऊ भी हो गई है। खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी दे देने से ही ये खराबिएं उत्पन्न हो जाती हैं। किसान ज़रूरत से ज्यादा पानी इसलिए देता है कि एक तो उसे पानी की क़ीमत जितनी ज़मीन वह सींचता है उस हिसाब से चुकानी पड़ती है न कि जितना पानी वह खच करे उस हिसाब से। ऐसी हालत में उसे पानी ख़र्च करने में किफ़ायत करने की अधिक चिन्ता नहीं रहती। किन्तु इसका दूसरा भी कारण है। किसान को इस बात की निश्चिन्तता नहीं रहती कि उसको हमेशा पानी समय पर मिलता रहेगा, अतः वह पहले से ही उसका प्रबन्ध कर लेना ज़रूरी समझता है। इन बुराइयों का अन्त करने के लिये दो उपाय काम में लाए जा सकते हैं। एक तो पानी की क़ीमत जितना किसान पानी ख़र्च करे उस हिसाब से ली जावे ताकि वह ज़रूरत से ज्यादा ख़र्च न कर सके। पानी के हिसाब से क़ीमत वसूल करने में कुछ कठिनाइयाँ हैं उनका पूरा-पूरा विचार कर लेना ज़रूरी है। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि जिन प्रदेशों में नहरों से सिचाई होती हो वहाँ पानी के निकास के लिए पूरा-पूरा प्रबन्ध होना चाहिए ताकि आवश्यकता से अधिक पानी एक स्थान पर इकट्ठा न हो सके।

नहरें तो केवल सरकार ही बनवा सकती है साथ ही देश के प्रत्येक भाग में नहरों का बन सकना असम्भव है। ऐसी दशा में हमें यह देखना है कि किसान स्वयं अपने प्रयत्न से खेती के लिए कहाँ तक सिंचाई के साधन उपलब्ध कर सकता है।

वर्षा का जल—

देश के अधिकतर भागों में आप किसानों को यह कहते सुनेंगे कि वर्षा यथेष्ट नहीं होती किन्तु कोई भी वर्षा के जल का पूरा उपयोग करने का प्रयत्न नहीं करता। वर्षा का जल तेज़ी से भूमि पर गिर कर बह जाता है, भूमि जल को पूरी तरह सोख ही नहीं पाती। जल का पूर्ण उपयोग किया जा सके इसके लिए यह आवश्यक है कि यदि भूमि चौरस न हो तो भूमि को चौरस कर दिया जावे और गांव की भूमि के चारो ओर एक छोटी सी मेड़ बना दी जावे। इसका फल यह होगा कि जल भूमि पर देर तक रुकेगा और भूमि उसको भली भांति सोख सकेगी। आवश्यकता न रहने पर पानी को बहने दिया जा सकता है। यदि जल को ऐसे ही बहने दिया जावे तो केवल यही हानि नहीं होती कि भूमि जल को नहीं सोख पाती वरन तेज़ी से बहने वाला जल भूमि की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है। कहीं कही तेज़ी से बहने के के कारण जल भूमि का कटाव करता है और भूमि में नाले बन जाते हैं जिससे भूमि खेती के काम की नहीं रहती।

कुओं का जल—

जहां कही भी उचित गहराई पर मीठा जल मिलता हो वहां किसान को कुआं बनाकर सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए। कुयें का जल नहर के जल से खेती के लिए अच्छा होता है। फिर किसान कुआं खोदकर नहर पर निर्भर नहीं रहता वह सिंचाई के लिए स्वतंत्र हो जाता है।

कुआं बनाने के लिए किसान को ऋण देने का प्रबन्ध होना चाहिए। कुओं से पानी खींचने के लिए चरस की अपेक्षा रेहट (Persian Wheel) अधिक सस्ता पड़ता है। हाँ यदि कुआँ पचास फीट से भी अधिक गहरा हो तब चरस ही काम में लाना चाहिए। किसान को इस बात का भी प्रयत्न करना चाहिए कि बाढ़ के पानी का जहाँ तक हो सके उपयोग कर लिया जावे। पहाड़ी स्थानों में बड़ी आसानी से गाँव के लोग बाँध बनाकर वर्षा के जल को रोक कर उसका सिंचाई के लिए उपयोग कर सकते हैं। दक्षिण राजपूताना, मध्यभारत, तथा दक्षिण में किसान प्राचीन समय में इस प्रकार जल को रोक लेते थे। प्रयत्न यह होना चाहिए कि गाँववालों के सम्मिलित परिश्रम से इस प्रकार के पंचायती बाँध बनाये जावें और वर्षा के जल को रोक कर उसका सिंचाई के लिए पूरा उपयोग किया जावे।

संयुक्त प्रांत के ट्यूब वैल—

संयुक्तप्रान्त की सरकार ने उन ज़िलों में जिनमें शारदा नहर के जल से उत्पन्न हुई बिजली पहुँच गई है ट्यूब वैल बनवाए हैं। लगभग डेढ़ हजार ट्यूब वैल प्रान्त में बन चुके हैं। एक ट्यूब वैल लगभग एक हज़ार एकड़ भूमि को सींचता है। ट्यूब वैल से सस्ते दामों पर सिंचाई हो सकती है, साथ ही एक गाँव में एक ट्यूब वैल होंगे अतएव किसान जिस समय और जिस दिन पानी दे देता है, नहर की भाँति किसान को जल का इन्तज़ार नहीं करना पड़ता, साथ ही ट्यूब वैल पर मीटर लगा होता है इस कारण जो किसान जितना पानी लेगा उसी हिसाब से उसको पानी का मूल्य देना होगा। इन ट्यूब वैल से दो लाभ होंगे,

एक तो गाँवों में पीने के लिए शुद्ध जल की कमी नहीं रहेगी और ट्यूब वैल पर ही एक रेडियो लगा कर गाँव वालों का सायंकाल मनोरंजन हो सकेगा और कृषि विषयक जानने योग्य बातों की शिक्षा दी जा सकती है। जहाँ-जहाँ सस्ते दामों पर पानी से बिजली उत्पन्न की जा सके वहाँ सरकार को ट्यूब वैल अवश्य बनवाने चाहिए।

खाद—

भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए उसमें खाद देने की नितान्त आवश्यकता है। फसल भूमि के कुछ तत्त्वों को कम कर देती है, तो दूसरे तत्वों को उसमें बढ़ा देती हैं। अस्तु, किसान को फसलों के हेर फेर (Rotatoin of crops) का सदैव ध्यान रखना चाहिए। मान लो कि एक फसल भूमि में पोटाश को कम करती है तो दूसरी बार उस पर ऐसी फसल बोना चाहिए कि जो पोटाश को भूमि में बढ़ा सके। फसलों का हेर फेर भारतीय किसान वर्षों से करता आ रहा है किन्तु केवल हेर फेर से ही भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाई नहीं रक्खी जा सकती उसके लिए खाद देने की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु अभाग्यवश भारतीय किसान अपने खेतों में बहुत कम खाद डालता है। अब हमें देखना यह है कि गाँवों में खाद के कौन से साधन उपलब्ध हैं और किसान उनका कितना उपयोग करता है।

खाद के संबंध में किसान को सलाह देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसान पैसे खर्च करके खाद मोल नहीं ले सकता।

वह इतना निर्धन है कि कीमती खाद तो वह खेत में डाल ही नहीं सकता। यही कारण है कि भारतवर्ष में सलफेट-आफ-अमोनिया नाइट्रेट, इत्यादि जैसी कीमती खादों का उपयोग नहीं हो सकता। हाँ फलों की खेती, तरकारी तथा मूल्यवान व्यापारिक फसलों के लिए हो सकता है कि किसान मोल लेकर खाद खेत में डालदे। अतएव अधिकतर किसान को खाद के लिए गांव में ही मुफ्त में मिलनेवाली चीजों पर निर्भर रहना होगा।

इस दृष्टि से किसान के पशुओं का गोबर, पेशाब, बचा हुआ चारा, भूसा, पत्तियाँ तथा घर का कूड़ा बहुत मूल्यवान है। गांव का सारा कूड़ा-कचरा अत्यन्त उत्तम खाद में परिणत किया जा सकता है। परन्तु अधिकतर किसान इस बहुमूल्य खाद को खेत में न डालकर जला डालते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि गांवों में ईंधन की कमी है और यदि ईंधन हो तो भी किसान की स्त्री धीमी आंच के लिए कंडे जलाती है। वर्ष में आठ महीने गोबर इत्यादि कंडे में परिणत करके जला डाले जाते हैं केवल वर्षा के चार महीनों में जब कंडे बनाने का धंधा नहीं हो सकता तब किसान गोबर की खाद बनाता है। आवश्यकता इस बात की है कि गांवों की ऊसर भूमि पर जंगल-प्लाट तैयार कर दें। गांव का छोटा जंगल-प्लाट गांव को घास और ईंधन देगा और तभी किसान को समझाया जा सकता है कि वह गोबर को जलाना छोड़कर उसकी खाद बनावे।

परन्तु किसान खाद भी ठीक तरह से नहीं बनाता। आप किसी गांव में जाइये आप को कूड़े के ढेर लगे दिखलाई देंगे। यह कूड़े के ढेर मक्खियाँ और गंदगी उत्पन्न करते हैं और गांव में एक प्रकार की दुर्गंध फैली रहती है। खाद के ढेर लगाने से

केवल गांव में गंदगी फैलती है यही बात नहीं है इस प्रकार अच्छी खाद भी तैयार नहीं होती। पानी बहुत से तत्त्वों को बहा ले जाता है और धूप बहुत से तत्त्वों को नष्ट कर देती है। यही नहीं हवा खाद को इधर-उधर उड़ा ले जाती है तथा बहुत सी खाद व्यर्थ में नष्ट हो जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक किसान खाद को गड्हों में तैयार करे। गड्हों में खाद तैयार करने से लाभ यह होगा कि तनिक-सा भी गोबर अथवा कूड़ा व्यर्थ फिक नहीं जावेगा और खाद भी उत्तम तैयार होगी। किसान दो गड्हे रक्खे। जब एक गड्हा भर जावे तो उसे बंद कर दे, और कूड़ा दूसरे गड्हे में डालने लगे। पहले गड्हे की खाद तैयार हो जाने पर वह उसे खेत पर डाल दे। तब तक दूसरा गड्हा भर जावेगा और पहला खाली हो जावेगा। उत्तम खाद तैयार करने के लिए उसमें थोड़ा पानी डाल देना चाहिए और पंद्रह दिन बाद उसे पलटते रहना चाहिए। इस प्रकार लगभग तीन महीने में बहुत बढ़िया खाद तैयार हो जावेगी।

कुछ लोगों का विचार है कि खेतों पर शौच जाने से भूमि उर्वरा होती है किन्तु यह उनकी भूल है। जब तक कि खाद सड़ न जावे तब तक वह भूमि को उपजाऊ नहीं बना सकती। हाँ खेतों पर शौच जाने से पेशाब से भूमि को अवश्य लाभ पहुँचता है। फिर इस प्रकार गांव के आस-पास शौच जाने से गांव में गंदगी बढ़ती है और बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि गड्हे वाले शौच गृह तैयार किए जावें जिनमें खाद तैयार हो जावे और गाँव भी साफ़ रह सके। (देखो गाँव में स्वास्थ्य और सफाई।)

अन्य देशों में किसान कूड़े को बिल्कुल व्यर्थ नहीं जाने देता सब का उपयोग खाद के रूप में करता है किन्तु भारतीय किसान

खेत में अधिकतर बिना खाद दिये ही खेती करता है, इसी कारण खेतों में पैदावार कम होती है। किसान यदि चाहे तो जहाँ वर्षा अधिक होती हो अथवा जहाँ पानी मिल सकता हो वहाँ हरी खाद (Green manure) का भी उपयोग कर सकता है। ढैंचा, मूँगफली, सन, गवाँर तथा अन्य कुछ ऐसी फसलें हैं कि जिनको खेत में पैदा करके जोत देने से खेत ऊर्वरा हो जाता है। किन्तु यह खाद तभी उपयोगी हो सकती है जब कि भूमि में नमी हो। पशुओं का मूत्र भी बहुमूल्य खाद है, किन्तु भारतीय किसान उसका तनिक भी उपयोग नहीं करता। उसको चाहिये तो यह कि वह अपने पशुओं को खेतों पर ही बाँधे, परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो वह पशुओं के बाँधने के स्थान पर मिट्टी बिछा दिया करे और उस मिट्टी को खेत में डाल दिया करे।

खाद के सम्बन्ध में एक बात यह ध्यान में रखने की है कि कि जिन खेतों में खाद डाला जावे उनको अधिक जल की आवश्यकता होगी।

अच्छा बीज—

यह तो प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि खेत में जैसा बीज डाला जावेगा वैसी ही फसल उत्पन्न होगी। किन्तु भारतीय किसान अच्छा बीज भी अपने खेत में नहीं डाल पाता। भारतीय किसान इतना निर्धन है कि वह बीज भी बचा कर नहीं रख पाता। फसल बोने के समय सवाये या ड्योढ़े पर वह बीज महाजन से लेता है। महाजन उसको घुना और सड़ा बीज दे देता है। ऐसे बीज को खेत में डालकर अच्छी फसल की आशा करना व्यर्थ है।

कृषि विभागों ने बहुत दिनों के परिश्रम तथा अनुसंधान के बाद उत्तम बीज पैदा किए हैं जिनको खेत में डालने से पैदावार अच्छी होती है। अब प्रयत्न यह किया जा रहा है कि किसान के

पास अच्छा बीज पहुँचाया जा सके। कृषि के बीज भंडार, सहकारी-समितियां, तथा ग्राम सुधार समितियां, सभी अच्छा बीज किसान को देने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यह सब कुछ होने पर भी जब तक किसान स्वयं बीज का प्रबन्ध नहीं करेगा बीज की समस्या हल नहीं हो सकती। किसा न को चाहिए कि अब कृषि विभाग से उत्तम बीज लेकर अपने खेत में डाले फिर आगे के लिये फसल में से बीज बचा कर रख ले। यदि किसान थोड़ा-सा परिश्रम करे और फसल काटने से एक दिन पूर्व खेत पर जाकर उन पौधों का बीज इकट्ठा करले जो कि अच्छे उगे है और उनको अलहदा साफ करके रख ले तो उसके पास अच्छे बीज का कभी टोटा न होगा। साथ ही किसान को ध्यान रखना चाहिए कि यदि कुछ वर्षों बाद उसका बीज कमजोर होने लगे तो उसे फिर कृषि विभाग से उत्तम बीज ले लेना चाहिए। अच्छे बीज के मोल लेने मे तनिक व्यय तो अधिक होता है किन्तु किसान को लालच न करके अच्छा बीज ही खेत में डालना चाहिए। क्योंकि अच्छा बीज ही सस्ता प्रमाणित होता है। किसान को अपना बीज सुरक्षित रखने के लिये उसे सावधानी से रखना चाहिए। कृषि विभाग ने धान, गेहूँ, कपास और गन्ने के उत्तम बीज तैयार किये हैं जिनका देश में खूब प्रचार हो रहा है, किन्तु अभी बहुत सी फसलों की तरफ ध्यान नहीं दिया गया। भविष्य में ज्वार, बाजरा, चना, मकई, दालें तथा अन्य फसलों के उत्तम बीज पैदा करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

अच्छे हल और औजार—

भारतवर्ष में सैकड़ो वर्षों से जो खेती के औजार काम में लाये जाते थे वही हल तथा औजार किसान आज भी काम में लाता है। कृषि विभाग ने आरम्भ में बहुत कुछ प्रयत्न किया कि किसान

योरोप तथा अमेरिका में प्रचलित बढ़िया हलों तथा यंत्रों को अपना ले किन्तु किसान ने अपने पुराने हल को न छोड़ा। भारतवर्ष की परिस्थिति ऐसी है कि यहाँ खेती के बढ़िया यंत्र और मशीनें कभी भी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं। छोटे-छोटे खेतों में ट्रैक्टर का क्या उपयोग हो सकता है, फिर मूल्यवान यंत्र तो किसान खरीद ही नहीं सकता। भारतीय किसान का हल ऐसा होना चाहिए कि जिसे वह अपने कन्धे पर उठा कर एक खेत से दूसरे खेत पर ले जा सके। साथ ही खेती के औजार ऐसे हों जिसको गाँव का बढ़ई अथवा लुहार आसानी से बना सके और उनकी मरम्मत कर सके। ऐसा न हो कि यंत्र के खराब हो जाने पर किसान को उसको ठीक करवाने के लिए इधर-उधर भटकना पड़े। संक्षेप में खेती के औज़ार तथा हल इत्यादि ऐसे हों कि जो बहुत कम कीमत के हों, हलके हों, जिससे किसान के कमज़ोर बैलों को उन्हें खींचने में कठिनाई न पड़े और वे इतने सादे हों कि गाँव का बढ़ई या कारीगर बना सके। योरोप तथा अमेरिका में काम में लाए जानेवाले यंत्र ऐसे नहीं हैं, यही कारण कि किसान ने उनको स्वीकार नहीं किया। इससे कोई यह न समझे कि हम अच्छे औजारों और हलों के पक्ष में नहीं हैं। खेती के औजारों में सुधार की आवश्यकता है, परन्तु ऊपर लिखी हुई बात को ध्यान में रखकर ही कृषि विभाग की इंजीनियरिंग शाख ने नये औज़ारों का आविष्कार किया है। जब प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो जावे कि नये औजार उपयुक्त हैं तो उनके बनाने के लिये बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किए जावें जिससे कि वे सस्ते दामों पर बेचे जा सकें। इस ओर अभी अधिक प्रयत्न नहीं किया गया है। मैस्टन तथा राजा हल तो अवश्य कुछ उपयोगी सिद्ध हुए हैं और उनका प्रचार बढ़ रहा है।

फसल के रोग तथा उसके शत्रु—

जिस प्रकार मनुष्य बीमार हो जाता है ठीक उसी प्रकार फसल को भी रोग लग जाता है। फसल के रोगी होने का मुख्य कारण फसल का निर्बल होना है। यदि खेत अच्छी तरह न जोता जावे, बिना सड़ी हुई खाद डाली जावे, कम खाद डाली जावे, खेत निराया न जावे, आवश्यकता से अधिक या कम पानी दिया जावे तो फसल निर्बल होगी और उसमें कीड़े लग जावेंगे। अतएव किसान को सदैव सतर्कतापूर्वक खेती को देखते रहना चाहिये और जैसे ही उसे यह ज्ञात हो कि फसल में कीड़ा लगना शुरू हुआ वैसे ही उसको कीड़े के विरुद्ध युद्ध छेड़ देना चाहिये।

सबसे पहली बात जो किसान को करनी चाहिए वह यह है कि उसे अपना बीज सुरक्षित रखना चाहिए। यदि बीज में कीड़ा लग गया तो फसल में अवश्य लगेगा। जहाँ किसान अपना अनाज रखता है उस भण्डार को बहुत साफ रखना चाहिए। भण्डार की दीवारों में छेद न रहने देना चाहिए तथा दीवारें चिकनी होनी चाहिए। भण्डार को साफ करके दहकते हुए कोयलों पर गंधक डाल कर भंडार में रखदे और उसके सब दरवाजे बन्द करदे और दो दिन के बाद भंडार को खोल कर उसे साफ कर ले तब अनाज उसमें भरे। ऐसा करने से सब कीड़े मर जावेंगे।

यदि फिर भी कभी फसल में कीड़े लग जावें तो किसान को अपने सहायको की सहायता से उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक फसल के कीड़ों को उसी मौसम में मार डालने की ज़रूरत है जब कि वह अण्डे देते हैं, क्योंकि यदि उन्होंने अंडे दे दिये और उनमें से असंख्य कीड़े उत्पन्न हो गए तो काम बहुत बढ़ जावेगा। इसलिए किसान को इस ओर बहुत सतर्क रहना

चाहिए। कीड़ों को नष्ट करने में सारे गाँव को सहायता करनी चाहिए क्योंकि यदि एक किसान के भी खेत में कीड़ा फैल गया तो अगले वर्ष औरो के खेत में भी आवश्य फैलेगा। गाँव के विद्यार्थियों, स्काऊटों तथा बच्चों को कीड़ों के नष्ट करने की शिक्षा देनी चाहिए। जैसे ही कीड़ा लगे वैसे ही कृषि विभाग से सलाह लेकर उसको नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। रात्रि को खेत के पास आग जलाने से भी कीड़े नष्ट हो सकते हैं। कीड़े लगी हुई फसल के बीज को दूसरी साल न बोना चाहिए।

कहीं-कहीं बंदर, सुअर, गीदड़, चूहे तथा अन्य जंगली जानवर खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं उसके लिये दो ही उपाय हैं। खेतों के चारों ओर बाड़ खड़ी करना, या गाँव वालों को बंदूक का लायसेंस देकर उनको मरवाने का प्रयत्न करना। सरकार इस कार्य में सेना का उपयोग कर सकती है।

भारत वर्ष में खेती के सुधार का एक आवश्यक विषय पशु सुधार है। यहाँ खेती पशुओं और विशेषतया बैलों द्वारा ही होती है, किन्तु इनकी वर्तमान दशा अत्यन्त शोचनीय है और उनके नस्ल में सुधार करने, उनके लिए चरागाहों का प्रबन्ध करने, बीमारी से उनकी रक्षा करने, तथा उसकी चिकित्सा करवाने और उनको पुष्टिकर भोजन मिल सके इसकी व्यवस्था करने की पूरी-पूरी आवश्यकता है। यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस पर एक पृथक परिच्छेद लिखना ही उचित होगा।

किसी भी उद्योगधंधे को सुचारु रूप से चलाने के लिए अन्य बातों के अतिरिक्त आवश्यक मात्रा में समय पर पूँजी का प्राप्त हो जाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। और कृषि सुधार के लिए भी सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि किसानों को पूँजी सम्बन्धी पूरी पूरी सुविधा हो। इस सम्बन्ध में वर्तमान दशा, और उसकी उन्नति के उपायों

पर हम पृथक रूप से विचार करेंगे। यहाँ पर केवल यह संकेत कर देना काफी होगा कि मौजूदा स्थिति किसान के लिए अत्यन्त हानिकर है और उसमें सुधार के लिए बहुत गुञ्जाइश है।

क्रय विक्रय का प्रश्न—

अभी तक कृषि सुधार के जिन-जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है और उनमें सुधार के जो भी उपाय बतलाए गए हैं यदि उनको कार्य रूप में परिणत किया जावे तो उसका अवश्य ही यह परिणाम होगा कि खेती की पैदावार अब से बहुत अधिक होगी तथा पदार्थों की उपयोगिता और गुणों में वृद्धि हो सकेगी। संक्षेप में, भूमि की चकबंदी, किसानों में शिक्षा, कृषि ज्ञान का प्रचार, उनकी शारीरिक उन्नति, सिंचाई का उचित प्रबन्ध, अच्छे बीज, खाद और औज़ारों की व्यवस्था, पशुओं की दशा में सुधार और पूँजी का उचित प्रबन्ध, इन सब बातों का सफलता पूर्वक यदि हल हो जाता है तो इस में तनिक भी संदेह नहीं कि हमारे खेतों की उपज बहुत अधिक बढ़ सकती है। किन्तु केवल पैदावार में वृद्धि हो जाना भर ही किसान की दृष्टि से काफी नहीं है, और न वह उसके लिए उत्सुक तथा प्रयत्नशील ही होगा क्योंकि उसको यह विश्वास नहीं हो पाता है कि उसकी मेहनत का पूरा पूरा लाभ उसको मिल सकेगा। और यह तब ही संभव हो सकता है कि उसकी पैदावार को ठीक-ठीक मूल्य पर बाज़ार में बेचने का प्रबन्ध हो, महाजन से उसका छुटकारा हो, तथा लगान का बोझ उस पर अधिक न हो। जब तक ये तीनों प्रश्न सफलतापूर्वक हल नहीं होते तब तक क़िसान को अधिक मजदूरी और उत्तम साधनों का उपयोग करके खेती की पैदावार बढ़ाने का तनिक भी उत्साह नहीं होगा, क्यों कि वह देखेगा कि अधिक परिश्रम करने से मुझे क्या लाभ जब सारा का सारा लाभ

दलालों, महाजनों और सरकार के पेट में जाने वाला है। आज यही वास्तव में हो रहा है। बाजार में अपने माल की उसको पूरी-पूरी कीमत नहीं मिल पाती। उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं से जितना अधिक वह उत्पन्न करता है वह सब महाजन अपने ऋण चुकाने के लिए ले जाता है और फिर भी कृषक जन्म जन्मान्तर तक ऋणमुक्त नहीं हो पाता। यह एक विशेष बात है, तथा लगान का बोझ भी उसके लिए असहनीय है। अतः क्रय विक्रय, ऋण और लगान की समस्याओं के संबंध में सविस्तार विचार करना आवश्यक है। इस परिच्छेद में केवल क्रय विक्रय के प्रश्न पर ही कुछ लिख देना पर्याप्त होगा।

जब तक कि भारतीय कृषक एक स्वावलंबन का जीवन व्यतीत करता था और उसकी पैदावार का अधिकांश भाग बाजार में बेचने के बजाय अपने हीं काम में खर्च होता था उसके सामने क्रय-विक्रय का कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित नहीं था। किन्तु ब्रिटिश हुकूमत के आने के पश्चात् जब देश की कृषि का अधिकाधिक व्यापारी-करण होने लगा और पैदावार का अधिकतर भाग अपने उपभोग के लिए नहीं किन्तु देश और विदेशों के बाजारों में बेचने के लिए उत्पन्न किया जाने लगा, तो स्वभावतः कृषकों के सामने अपने माल को बेचने की आवश्यक व्यवस्था करने का सवाल उठा। और जब तक इस प्रश्न को संगठित रूप से हल करने का कोई प्रयत्न नहीं होता, यह भी स्पष्ट है कि किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य कदापि नहीं मिल सकता। क्यों कि जिन लोगों के हाथों उसे अपना माल बेचना होता है वे सुसंगठित होते हैं और किसान को इस से हर प्रकार से हानि ही होती है। यीह कारण है कि आज बेचारा गरीब किसान यदि रात-दिन मजदूरी करके कुछ पैदा करता है, तो भी उसको पूरी पूरी कीमत उसको नहीं मिल पाती

और बीच के लोग, बनिए और दलाल, उसका मन माना लाभ करते रहते हैं। इसके पूर्व कि वर्तमान स्थिति का सुधार किस प्रकार किया जा सकता है इसके बारे में कुछ लिखा जावे, उन कठिनाइयों का उल्लेख कर देना आवश्यक है जो आज किसान के रास्ते मे उपस्थित हैं और जिनके कारण वह अपनी पैदावार का पूरा मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता।

किसान के मार्ग में सबसे बड़ी अड़चन तो उसकी कर्जदारी है। वह बनिया जो कि किसान को समय-समय पर रुपया उधार देता रहता है, प्रायः व्यापारी भी होता है और कभी तो वह रुपया ही इस शर्त पर उधार देता है कि किसान को पैदावार उसी के हाथ बेचनी होगी। ऐसी दशा में मूल्य और माल बेचने के उचित समय के मामले में किसान पराधीन होता है और गाँव का महाजन जिसका वह ऋणी होता है अपनी इच्छा अनुसार कीमत पर उससे पैदावार खरीद लेता है। बेचारे किसान को इससे पूरी हानि उठानी पड़ती है। कर्ज की किश्त और व्याज तथा लगान देने के लिए भी उसे फसल पकते ही पैदावार बेच देनी होती है और कुछ दिनों ठहर कर वह भाव के बढ़ने की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

उसके मार्ग में दूसरी कठिनाई उसका अशिक्षित होना है। बाजार भाव का उसको पूरा-पूरा ज्ञान नहीं होता। हिसाब और तोल आदि के मामलों में अधिक होशियार न होने से उसे आसानी से धोखा दिया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आवागमन की सुविधा न होने से एक किसान के लिए यह भी तनिक कठिन है कि वह गांव से पास के कस्बे या शहर की मन्डी तक बेचने के लिए अपना माल ला सके, विशेषतया जब कि एक छोटे पैमाने

का काश्तकार होने को कारण उसका माल भी बहुत थोड़ा ही होता है। उस पर शहर की मन्डी तक ले जाने में जितना उसे व्यय करना हो तथा जितनी परेशानी का सामान करना पड़े, उसके अनुपात में उसे लाभ भी नहीं हो सकता। ऐसी हालत में मजबूरन उसे अपने गांव के बनिये को ही जो कुछ दाम वह देने को राजी हो उसी पर माल बेच देना होता है।

यदि किसी प्रकार वह अपनी पैदावार को बनिये के हाथ से बचा भी सका और मन्डी तक माल को ले जाने का खर्च और असुविधा भी उठाने को तैयार हो गया, तो वहाँ बाज़ार में पहुँचने के पश्चात् भी उसे बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बाजार के दलाल लोग माल खरीदने वालों से मिले रहते हैं और दोनों मिलकर अशिक्षित किसान का पूरा-पूरा शोषण करते हैं। बाजारों में किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं होने से वहाँ बहुत सी ऐसी खराबियां पाई जाती हैं जिनसे किसान को पूरा नुकसान उठाना पड़ता है। इन प्रचलित कुप्रथाओं में से कुछ इस प्रकार हैं माल किसान की मौजूदगी में दलाल नहीं तोलता और न उसको माल के देने पर कोई रसीद ही दी जाती है, जो लोग माल की जाँच करने के लिए बतौर नमूने के कुछ माल लेते हैं वह न तो वापिस होता है और न माल खरीदने पर उससे काटा ही जाता है, भाव खुले आम तय नहीं होता बल्कि गुप्त रूप से तय किया जाता है, दलाल लोग खरीदने वाले से मिले रहते हैं क्योंकि वे अधिकतर उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आते रहते हैं। जो भाव तय हो जाता है उसके बाद भी कई गर वाजिब लागतें वसूल की जाती हैं। कुछ लागतों के नाम इस प्रकार हैं, धर्मादा, पींजरपोल हम्माली दलाली इत्यादि। प्रायः माल

के आधे तुल जाने पर माल के हल्के होने की शिकायत की जाती है और यदि भाव में और कमी न की जावे तो लेने से इन्कार कर दिया जाता है। ऐसी हालत में किसान को मजबूर हो कर भाव में और कमी करनी पड़ती है। इसके अलावा, वर्तमान क्रय-विक्रय की पद्धति में और भी कई दोष हैं। किसान को सब तरह का माल एक ही भाव पर बेचना पड़ता है और इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं है कि अच्छे माल की पैदावार की अधिक कीमत मिल सके। इससे किसान को पैदावार में उन्नति करने का प्रोत्साहन नहीं मिलता। विभिन्न स्थानों में अलग-अलग तोल होने से भी बहुत कुछ गड़बड़ी उत्पन्न होती है और बहुत से स्थानों में तो माल खरीदने और बेचने के लिए भी अलग-अलग तोल होते हैं। एक और कठिनाई बाजार में किसान को झेलनी पड़ती है वह गोदाम सम्बन्धी है। बाजारों में प्रायः इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं होता कि किसान अपने माल को किसी स्थान पर सुरक्षित रख सके। गोदामों के इस अभाव के कारण वह जल्दी से जल्दी अपने माल को बेच देने की फिक्र में रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि ऊँचे भाव के लिए वह अधिक समय तक वहाँ नहीं ठहर सकता और जिस भाव पर भी सम्भव हो उसे अपना माल बेच देना पड़ता है। उपरोक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान स्थिति में किसान के लिए अपनी पैदावार को उचित मूल्य पर बेचने के मार्ग में एक नहीं अनेक कठिनाइयाँ हैं और जब तक उनके हल करने का कोई उपाय नहीं निकल आता किसान को न तो अपनी मेहनत का पूरा-पूरा लाभ ही मिल सकता है और न उसे अधिक मेहनत करके पैदावार को बढ़ाने में कोई उत्साह ही हो सकता है।

इस स्थिति में सुधार करने के लिए सब से पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक गाँव में या गाँव के बहुत छोटे होने

पर आस पास के दो तीन गाँवों को मिलाकर एक सहकारी-विक्रय-समिति (Cooperative Sale Society) स्थापित की जावे, जिसके अधिक से अधिक संख्या में किसान लोग सदस्य हों। सहकारी-विक्रय-समिति का सब से बड़ा लाभ यह होगा कि आज जो प्रत्येक किसान के अलग-अलग असंगठित रूप में अपनी पैदावार बेचने के कारण दलालों और महाजनों को उसका शोषण करने का अवसर मिल सकता है वह फिर सम्भव नहीं होगा। और किसान की दृष्टि से उसकी सब से बड़ी एक यही तात्विक कमजोरी है कि जहा उसकी पैदावार को खरीदने वाले बड़े-बड़े दलाल और महाजन होते है, वहाँ यह विचारा एक साधारण सा व्यक्ति होता है जो उनके समक्ष खड़े रहने की शक्ति नहीं रखता। शाही कृषि कमीशन ने भी इस सम्बन्ध में अपनी राय इस प्रकार दी है "वह आदर्श जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए सहकारी-विक्रय-समितियों को स्थापित करने का है, जो कि किसान को बाजार के लिए पैदावार उत्पन्न करने और उसे तैयार करने की शिक्षा दे सकेंगी, जो पैदावार को अलग अलग ग्रेडो में बाँटने के लिए काफी परिमाण में माल इकट्ठा कर सकेंगी, और जो कि भारतीय किसान को निर्यात बाजार और बड़े पैमाने पर खरीद करने वाली मिलों के निकट सम्पर्क में ला सकेंगी। सहकारी-विक्रय-समितियों की स्थापना से किसान को और भी कई लाभ होगे। आज जो उसके और पैदावार के खरीदार के बीच में कई दलाल लोग कार्य करते हैं उनमें से बहुत से अनावश्यक लोग, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, हटाए जा सकेंगे। खेती के लिए तथा अपने परिवार के खर्च के लिए किसान को अपनी पैदावार फौरन ही बिना अच्छे भाव की प्रतीक्षा किए बेच देनी होती है, किन्तु विक्रय समिति उसे उसकी पैदावार पर कुछ रुपया अगाऊ दे सकेगी और इस

प्रकार किसान को इस हद तक न तो महाजन के हाथों में फँसना पड़ेगा और न चाहे जिस भाव पर माल बेच देने की उसे कोई जल्दी ही रहेगी। सहकारी-समितियाँ सरकार की सहायता से माल के रखने के लिए गोदामों को भी सुविधा कर सकेंगी, किसान के लिए अच्छे बीज का प्रबन्ध कर सकेंगी और पैदावार का बीमा भी करा सकेंगी ताकि किसी दुर्घटना के कारण किसान को हानि न उठाना पड़े। इसके अलावा किसान के अशिक्षित होने से बाजार में जो उस पर अनेक लागतों का बोझ लाद दिया जाता है और जो बहुत सी अनुचित बातें होती हैं जैसे भाव का खुले आम में तय न होना, नमूने के लिए जो पैदावार ली जावे उसको वापिस न करना आदि वे सब बन्द हो सकेंगी। इन्हीं सब बातों को समझकर हिन्दुस्तान में भी सरकारी और कृषि विभाग ने इस ओर कुछ प्रयत्न करना आरम्भ किया है, किन्तु अभी तक जितना कार्य इस दिशा में हो सका है वह बहुत थोड़ा है और भविष्य में बहुत कुछ करने के लिए गुञ्जाइश है।

वर्तमान स्थिति में सुधार करने का दूसरा उपाय नियंत्रित (Regulated) बाजारों की स्थापना करना है। बरार और बम्बई आदि प्रान्तों में इस प्रकार के बाजार स्थापित किए जा चुके हैं। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के बाजारों के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रान्त में एक विशेष कानून बनाया जावे जिसके आधीन जगह-जगह ऐसे बाजार स्थापित किए जा सकें। बाजारों का नियंन्त्रण एक बाजार कमेटी द्वारा होता है जिस पर माल बेचने वाले किसानों, व्यापारियों और स्थानीय संस्थाओं (म्यूनिसिपैल्टी आदि) के प्रतिनिधि होते हैं। पैदावार के बेचने के सम्बन्ध में जो उपनियम बनाये जाते हैं उनके अनुसार क्रय विक्रय हो इस बात की जिम्मेवारी बाजार

कमेटियों पर होती है। यह उपनियम इस उद्देश्य से तैयार किए जाते हैं कि किसान के साथ जो ज्यादतियाँ होती हैं वे बन्द हो सके। उदाहरण के तौर पर दलालों, तोलनेवालों आदि को किन शर्तों पर लाइसेन्स मिलना चाहिए, क्या करा लागतें और अनाज की बिक्री के समय लगना चाहिए और उनका किस प्रकार से उपयोग होना चाहिए, अशुद्ध किन तोलों को काम में नहीं लेना चाहिए आदि आदि कुछ बातें हैं जिनके बारे में उपनियम बनाये जाते हैं। शाही कृषि कमीशन तथा वेंकिंग कमेटियों ने एक मत से यह राय जाहिर की है कि इस प्रकार के नियंत्रित बाजारों Regulated Market की स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक है।

उपरोक्त दो उपायों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख किया जा चुका है, अन्य कुछ उपाय और हैं जिनका क्रय विक्रय संबन्धी कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे—आवागमन से साधनों में यथेष्ठ उन्नति करने की पूरी आवश्यकता है। हमारे गांवों में अब भी सड़कों का पूरा अभाव है जिस के कारण एक स्थान में दूसरे स्थान की पैदावार ले जाने में बड़ी कठिनाई होती है। मोटर ट्रैफिक में आवश्यक सुधार और रेलवे की शाखाओं का अधिकाधिक प्रचार करने से इस दिशा में बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को इस विषय में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, साथ ही भारत-सरकार का भी यह कर्तव्य है कि रेल्वे पोलिसी का संचालन इस प्रकार से करे कि जिससे मोटर ट्रैफिक की उन्नति में अनुचित बाधा न पड़े। दूसरी आवश्यकता यह है कि तोलों की जो भिन्नता आज पाई जाती है वह न रहे। अलग अलग स्थानों के अलग अलग तौल होने के कारण विचारा किसान भली प्रकार से समझ ही नहीं पाता कि उसने कितना माल किस तौल से बेचा है और इससे

उसके साथ अन्याय होने की बहुत सम्भावना रहती है। अतः सरकार को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए। किसानों में शिक्षा का प्रचार होने से भी उनके साथ होनेवाली बहुत सी ज्यादतियाँ रुक सकेंगी। इस बात का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए कि माल बाजार में बिकने के लिए आवे उसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो। हिन्दुस्तान के पैदावार की विदेश में आज इस बारे में बड़ी बदनामी है कि माल नमूने के अनुसार नहीं होता और उसमें मिलावट होती है। अतः कानून द्वारा इसे भी रोकने की जरूरत है।

कृषि और सरकार—

अब तक के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में कृषि की दशा अत्यन्त शोचनीय है और उसमें अनेक दृष्टि से उन्नति की अत्यन्त आवश्यकता है। और यह उन्नति तब ही संभव हो सकती है जब कृषि और सहकारिता-विभाग मिलकर कृषि की दशा सुधारने तथा संबंधित अनेकों समस्याओ को हल करने का संगठित प्रयत्न करें। जब तक राष्ट्र की सारी शक्ति किसान की विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने में नहीं लगती, जब तक किसान को यह आश्वासन नहीं मिलता कि जो वह पैदा करता है वह उसके पास रहेगा और उसका शोषण बंद हो जावेगा तब तक खेती की उन्नति नहीं हो सकती। खेती हमारा राष्ट्रीय धंधा है अतएव समस्त राष्ट्र की शक्तियों को उसकी उन्नति के लिए केन्द्रित करना होगा। प्रसन्नता की बात है कि प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर गया है। हक़ आराज़ी क़ानून, ऋण सम्बन्धी कानून तथा ग्राम सुधार कार्य के द्वारा प्रान्तीय सरकारें किसानों की स्थिति को सुधारने की चेष्टा कर रही हैं, किन्तु अभी बहुत कुछ करना शेष है।

चौथा परिच्छेद

पशु पालन

हिन्दोस्तान मेंखेती के काम में बैल का जो महत्त्व है वह किसी से छिपा नहीं है। खेती के प्रत्येक कार्य-जुताई से लेकर पैदावार को मंडी में लेजाने तक किसान को बैलों की सहायता की आवश्कता पड़ती है। वास्तव में भारतींया किसान का मुख्य अवलम्ब बैल ही है। भारतवर्ष में गाय, बैल, और भैंसों की संख्या इक्कीस करोड़ से ऊपर है। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है कि जहां इनकी संख्या इतनी अधिक हो। बैल की भारतवर्ष के राष्ट्रीय धंधे—कृषि के लिए इतनी अधिक आवश्यकता होते हुए और हिन्दुओं में गाय के पूज्यनीय समझे जाने पर भी देश में गाय और बैलों की नसल ऐसी खराब हो गई है कि गाय तो दूध देने वाला पशु ही नहीं रहा, उसका स्थान भैंस ने ले लिया है। और बैल बहुत निबल तथा खेती के काम के लिये कम उपयोगी हो गया है। अगर हम चाहते हैं कि देश में कृषि की उन्नति हो तो गाय और बैल की नस्ल का सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है।

गाय और बैल की नस्ल को सुधारने के लिये हमें चारे और उत्तम नस्ल उत्पन्न करने का प्रबंध करना होगा तभी भारत में गाय और बैल उत्तम जाति के पैदा हो सकेंगे। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि भारतवर्ष में अच्छी जाति के बैल रहे ही नहीं। अब भी भारतवर्ष में कुछ अच्छी नस्लें शेष है जो कि संसार की किसी भी अच्छी नस्ल की समता कर सकती है। उनमें से मुख्य नस्लों के नाम यहाँ दिये जाते हैं:—

सयुक्तप्रान्त की पंवार, पंजाब की हरियाना और शाईवाल, सिंध की थार पारकर और सिंध, मध्य भारत की मालवी, गुजरात की कांकरेज, काठियावाड़ की गिर, मध्यप्रान्त की गोलो, और मदरास की औंगेलो नस्लें भारत में प्रसिद्ध हैं। परन्तु साधारणत: चारे की कमी के कारण तथा नस्ल उत्पन्न करने का ढंग ठीक न होने के कारण यह नस्लें भी खराब होने लगी हैं। साधारण नस्लें तो इतनी खराब हो गई है कि उन नस्लों के बैल बहुत ही निर्बल और खेती के काम के नहीं रहे। अतएव बैलो की नस्ल का सुधार करने के लिये दो बातों की आवश्यकता है (२) चारे का प्रबंध करना, (२) नस्ल पैदा करने की पद्धति में सुधार कना।

चारे की समस्या—

जैसे-जैसे भारतवर्ष में जनसंख्या बढ़ती गई और इस बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण के लिये अधिकाधिक पैदावार की आवश्यकता हुई वैसे वैसे परती भूमि को जोत डाला गया। इसका फल यह हुआ कि देश में गोचर भूमि की कमी हो गई। गोचर-भूमि के कम हो जाने से चारे की समस्या उठ खड़ी हुई। यद्यपि गोचर भूमि कम हो गई और चारे का अकाल पड़ने लगा किन्तु भारतीय किसान

ने अपने ढोरों के पालने के ढङ्ग को नहीं बदला। वह अब भी पुराने ढङ्ग से ही अपने ढोरों को पालना चाहता है जब कि चारे की बहुतायत थी। भारतीय किसान अब भी अधिकतर अपने ढोरों का चरागाह में चर आना ही पर्याप्त समझता है। हाँ यदि गाय दूध देनेवाली हुई और उन दिनों, जब कि बैलों को खेतों पर बहुत परिश्रम करना पड़ता है किसान घर पर भी सानी देता है। जब गाय दूध नहीं देती और खेतों पर काम नहीं होता है तब वह अपने ढोरों को चरने के लिए छोड़ देता है और घर पर बहुत कम चारा खाने को देता है।

बैलों और अन्य पशुओं के बराबर चलने और चरने से मैदान में घास बढ़ नहीं पाती और बहुत सी नष्ट हो जाती है। जब कि गोचर-भूमि बहुत थी उस समय इस प्रकार पशुओं को चराने से विशेष हानि नहीं होती थी किन्तु अब जब गोचर-भूमि बहुत कम है तब इस प्रकार पशुओं को चराने से मैदान में जितनी घास उत्पन्न हो सकती है उत्पन्न नहीं हो पाती। दूसरे घास बहुत कम होने के कारण पशुओं का पेट तो भरता नहीं, चलने से परिश्रम अधिक होता है जिससे कि उनको अधिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। विशेष कर ग्रीष्म ऋतु में जब कि सारा भारतवर्ष सूर्य की तेज धूप से तप्त हो जाता है। जो कुछ थोड़ी बहुत घास होती है वह भी जलकर भस्म हो जाती है। उस समय ढोर किसी प्रकार मैदान में सूखे तिनकों को खाकर घर पर थोड़ा-सा चारा पाकर आधे पेट रह कर निर्वाह करते हैं। यही कारण है कि एप्रिल, मई, जून के महीनों में गाय और बैल बहुत निर्बल दिखलाई देते हैं। फिर जुलाई में यकायक जल गिरते ही घास के अंकुर फूटने लगते हैं और पिछले तीन या चार महीनों का भूखा ढोर उस कच्ची घास को खूब भर पेट खाता है। इसमें

एक हानि तो यह होती है कि घास उत्पन्न ही नहीं होने पाती, दूसरे ढोर को सैकड़ों प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं जिससे लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष ढोर मर जाते हैं।

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि जो कुछ भी गोचर-भूमि है उसकी रक्षा की जावे और उसका प्रबन्ध इस प्रकार किया जावे कि वह अधिक से अधिक चारा उत्पन्न कर सके। इसके लिए इस बात का प्रबन्ध करना होगा कि प्रत्येक गाँव में कुछ भूमि केवल चारा और ईंधन उत्पन्न करने के लिए सुरक्षित कर दी जावे। जंगल विभाग की सहायता से गाँव के किसान उन पर एक जङ्गल का टुकड़ा (Forest plot) तैयार करें। गाँव के जंगल में पशुओं को चरने न दिया जाय। गाँव में जिस किसी को घास की आवश्यकता हो वह काट कर ले जावे। इससे यह लाभ होगा कि उस भूमि पर घास खूब उत्पन्न होगी और चारे की कमी दूर हो जावेगी। जिन गावों में जंगल के टुकड़े तैयार न हो सकें उन गाँवों में गोचर-भूमि को दो भागों में बाँट दिया जावे और एक भाग घास उत्पन्न करने के लिये सुरक्षित रक्खा जावे, दूसरे पर गाँव के पशु चरा करें। इस प्रकार गाँव में अधिक से अधिक घास उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही किसान को घास समय पर काटकर भर कर रखने के लाभ बताकर उसको घास काट कर रखना सिखाना होगा।

परन्तु केवल घास उत्पन्न करने से ही चारे की समस्या हल नहीं हो जावेगी। किसान को यह समझ लेना चाहिए कि भविष्य में उसे अधिकाधिक चारे की फसलें उत्पन्न करना पड़ेगा तब वह अपने ढोरों के लिए यथेष्ट चारा उत्पन्न कर सकेगा। कृषि विभाग को चाहिए कि क्लोवर जैसी दूसरी चारे की फसलें ढूंढ़ निकाले जो कि तीन चार सप्ताह में तैयार हो

सकें। क्योंकि किसान अपनी मुख्य फसलों को छोड़ कर चारे की फसलें पैदा नहीं करेगा। इसलिए चारे की फसल ऐसी होनी चाहिये कि जो खरीफ और रबी की फसल के बीच में आसानी से पैदा की जा सके जिससे कि किसान को कोई हानि न हो। सिंचाई विभाग चारे की फसलों की सिंचाई न ले तो किसान चारे की फसलों को उत्पन्न करने के लिए और भी उत्साहित हो सकता है।

चारा प्राप्त करने का एक और भी स्थान है अर्थात-जंगल। हमारे जंगलों में अनन्त राशि में घास खड़ी रहती है और प्रति वर्ष नष्ट हो जाती है। अभी तक इन जंगलों का विशेष उपयोग नहीं हो सका। जंगल विभाग साधारणतः यह पसन्द नहीं करता कि उनमें पशु चरें क्योंकि पशु पेड़ों को हानि पहुँचाते हैं। हाँ कुछ भागों में पशुओं को चराने की आज्ञा भी दे दी जाती है। जंगल विभाग को चाहिए कि जंगल में से घास काटने की खुली आज्ञा दे दें और इसके लिए किसानों से कुछ न लिया जावे। इससे जंगलों के पास रहनेवालों को चारे की सुविधा हो जावेगी। साथ ही जंगल विभाग को जंगलों में घास कटवा कर रखनी चाहिए। रेलवे चारे को ले जाने का भाड़ा कम से कम लें तो अकाल के समय जब कि चारे की कमी के कारण पशु मर जाते हैं तब उन स्थानों को जंगल से घास भेज कर पशुओं की प्राण रक्षा की जा सकेगी।

नस्ल को सुधारने का उपाय—

चारे की समस्या हल कर लेने के बाद हमें गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने की ओर ध्यान देना होगा। इस समय जिस प्रकार नस्ल बिगड़ती जा रही है उसको देख कर तो यहां

कहना पड़ेगा कि देश में अच्छी नस्ल के पशु भविष्य में नहीं मिलेंगे। नस्ल के बिगड़ने का मुख्य कारण यह है कि हमारे शहरों और गांवों में जो बेकार, खराब जाति के सांड़ घूमा करते हैं उससे ही सन्तानोत्पत्ति होती है। यह जो असंख्य निर्बल और रद्दी सांड़, गाय और बैलों की नस्ल को खराब कर रहे हैं इसको रोकना होगा नहीं तो बैलों की नस्ल सुधर नहीं सकती। कुछ विद्वानों ने तो यह सम्मति दी है कि इन सांड़ों को मरवा दिया जावे किन्तु हिन्दू जनता इसको कदापि सहन नहीं कर सकती। अतएव इस समस्या को हल करने का एकमात्र उपाय यह है कि उन्हे नपुंसक बना दिया जावे जिससे कि वे नस्ल को खराब न कर सकें। हिन्दुओं में प्राचीन समय से यह प्रथा चली आई है कि मृत पुरुष के स्मारक स्वरूप उसके पुत्र इत्यादि एक बछड़े को धार्मिक चिन्हों से अंकित करके छोड़ देते हैं। पहले अच्छी नस्ल का बछड़ा सॉड़ बनाया जाता था किन्तु अब सस्ता से सस्ता बछड़ा छोड़ा जाता है। अतएव होना यह चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को यह बतलाना चाहिए कि अच्छी नस्ल के बछड़े को सांड़ बनाना धार्मिक कार्य है।

आवश्यकता इस बात की है की पशु चिकित्सा विभाग जिन सांडों को अयोग्य समझे उन्हें छांट-छांट कर नपुंसक बनादे और सरकारी बुल-फार्म पर अधिक से अधिक सांड़ तैयार किए जावें। यह सांड़ डिस्ट्रिक बोड, गऊशाला, तथा गांवों को बेंच दिए जावें। गांव मे जमीदारों पर यह दबाव डाला जावे कि वह सांड़ खरीद कर गाँवों में रक्खें। पंचायतें, ग्रामसुधार समितियाँ, गाँव की सहकारी समितियाँ भी इस कार्य में सहायक हो सकती हैं। इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि प्रत्येक गांव मे एक अच्छा साँड़ पहुँच जावे तभी देश में गाय और बैलों की नस्ल में सुधार हो सकता है।

इस कार्य में गऊशालाएँ बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं। हिन्दोस्तान में हज़ारों की संख्या में गऊशालाएँ हैं और उन पर करोड़ों रुपया हिन्दुओं का व्यय होता है। किन्तु इनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। केवल वृद्ध गायों को इनमें रक्खा जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि गऊशालाओं का नवीन संस्करण किया जावे। प्रत्येक गऊशाला एक उत्तम जाति का साँड़ रक्खे जिससे समीपवर्ती गाँवों में पशुओं की नस्ल सुधरे। यही नहीं प्रत्येक गऊशाला का रूप पशु सुधार केन्द्र (Cattle improvement Centre) का सा होना चाहिये। पशुओं का पालन किस प्रकार होना चाहिए, कौन-सा चारा उनके लिये लाभ दायक होगा। चारे की कौन सी फसल किसानों को पैदा करना चाहिए. पशुओं के रोगों की चिकित्सा किस प्रकार होनी चाहिए। इन सब बातों का प्रदर्शन इन गऊशालाओं में होना चाहिए। यदि कृषि-विभाग और पशु चिकित्सा विभाग प्रयत्न करे और गऊशालाओं का इस प्रकार उपयोग किया जावे तो वे देश के लिए अत्यन्त हितकर हो सकती हैं। समय-समय पर गऊशाला कमेटी अपने क्षेत्र के पशुओं की एक प्रदर्शनी करे। उससे उस क्षेत्र में इन बातों का प्रचार भी होगा और यह ज्ञात भी हो सकेगा कि इन उपायों से नस्ल में कहाँ तक सुधार हो रहा है। अभी तक सरकार तथा जनता का ध्यान इस ओर नहीं गया है। गायों के भक्तों को यह न भूल जाना चाहिए कि केवल वृद्ध गायों की जीवन रक्षा करने से ही गाय की रक्षा न हो सकेगी। हमें गाय को आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक बनाना होगा। जहाँ सम्भव हो गऊशालाओं को दूध का धंधा हाथ में लेना चाहिए। आज हिन्दोस्तान में स्थिति ऐसी हो गई है कि शहरों और कस्बों में शुद्ध दूध मिलना कठिन हो गया है।

लेकिन गाय और बैलों की नस्ल का सुधार एक बात पर बहुत निर्भर है। वह है गाय को अधिक दुधारू पशु बनाना। यह तो हम पहले ही कह आए हैं कि गाय दूध देने वाला पशु नहीं रहा है। गाय के स्थान पर दूध देने का काम भैंस करती है। गाय तो खेती के लिये बैल देती है। एक साधारण किसान से यह आशा नहीं का जा सकती कि दूध के लिये वह गाय पाले। अतएव यदि गाय की नस्ल का सुधार हो सके जिससे वह दूध भी यथेष्ट दे और अच्छे बैल भी उत्पन्न करे तो यह समस्या हल हो सकती है। किसान गाय को आसानी से पाल सकता है और उससे उसको दोनों आवश्यक चीजें अनायास ही मिल जावेंगी अतएव गाय की नस्ल को सुधारने के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है।

पशु चिकित्सा—

लेकिन केवल चारे का प्रबन्ध कर देने तथा नस्ल को सुधारने से ही पशु पालन की समस्या हल नहीं हो जावेगी। भारतवर्ष में पशुओं के रोग इस भयंकर रूप में फैले हुए हैं कि साधारणतः पशु का जीवन बहुत थोड़ा होता है। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में पशु मर जाते हैं। यदि पशुओं की इन महामारियों से रक्षा न की गई तो पशुओं का सुधार सम्भव न होगा। क्योंकि किसान एक कीमती बैल या गाय को उस समय तक नहीं खरीदेगा जब तक कि उसे विश्वास न हो जावे कि वह बहुत जल्दी ही किसी रोग से मर न जावेगा। किसान अधिकतर सस्ता पशु खरीदता है क्योंकि यदि वह मर भी जावे तो भी उसे अधिक हानि नहीं उठानी पड़ती।

पशुओं की रोगों से रक्षा करने के लिए दो उपाय करने होंगे। प्रथम गाँव वालों को इस बात की शिक्षा देनी होगी कि

पशुओं के साधारण रोगों की चिकित्सा किस प्रकार की जावे। रेडियो, मेलों, पैंठों तथा गऊशालाओं के द्वारा किसान को यह भली भाँति बतला देने की जरूरत है कि रोग किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। किसानों को उन रोगों की किस प्रकार चिकित्सा करनी चाहिए। साथ ही किसान को यह बतलाने की भी आवश्यकता है कि जब गाँव में या आस पास कोई भयानक छूत का रोग फैला हो तो उन्हें क्या सावधानी करनी चाहिए। दूसरे छूत के भयानक रोगों से पशुओं की रक्षा करने के लिए रिंडरपैस्ट इत्यादि का जो टीका लगाया जाता है उसका समुचित प्रबंध किया जावे। अभी तक पशु चिकित्सक जिला अथवा तहसील के केन्द्र स्थान में ही रहते हैं। किसान को इन अस्पतालों से कोई लाभ नहीं होता। यदि धनाभाव के कारण प्रान्तीय सरकार पशु चिकित्सकों की संख्या न बढ़ा सके तो साधारण शिक्षित युवकों को लेकर उन्हे रिंडरपैस्ट इत्यादि के टीका लगाने तथा अन्य रोगों की चिकित्सा की शिक्षा देकर उन्हें दस या पंद्रह गाँवों के मध्य में थोड़ा अलाऊंस देकर रख लिया जावे। यह युवक अपने निजी काम करने के अतिरिक्त वैटीरिनैरी डाक्टरों की देख भाल में काम करें।

भविष्य में जब भारतीय किसान की स्थिति कुछ सुधरे और पशुओं की नस्ल में भी सुधार हो जावे तथा रोगों को कुछ हद तक रोका जा सके तो हिन्दुस्तान में सरकारी-पशु बीमा समितियां की स्थापना की जा सकती है। किन्तु इस आन्दोलन के चलने में अभी बहुत देर है।

पशुओं के सुधार की समस्या भारतवर्ष के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि पशुओं की नस्ल का सुधार न हुआ तो कृषि का सुधार होना भी असम्भव है।

पाँचवाँ परिच्छेद

ग्रामीण ऋण

सन १९३० में प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमिटियों ने अपने अपने प्रान्तों में ग्रामीण ऋण का जो अनुमान लगाया है उसके अनुसार ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण ९०० करोड़ रुपए था। अभी किसी कमेटी ने देशी राज्यों के ग्रामीऋ ऋण का पता नहीं लगाया और न देशी राज्यो ने ही यह जानने का प्रयत्न किया कि उनके किसानों पर कितना ऋण है। देशी राज्यो के किसानों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश भारत के किसानों से भी गिरी हुई है अतएव देशी राज्यों का ग्रामीण ऋण ब्रिटिश भारत के ग्रामीण का एक तिहाई के लगभग माना जा सकता है क्योंकि देशी राज्यों की जनसंख्या देश की जनसंख्या की एक तिहाई के लगभग है। अतएव १९३० के सारे देश का ग्रामीण ऋण १,२०० करोड़ रुपये के लगभग था। किन्तु १९३० के उपरान्त खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया इस कारण आज ऋण का भार लगभग ड्योढ़ा हो गया है।

ऋणी होना प्रत्येक दशा में आर्थिक हीनता का सूचक नहीं

है। बड़े से बड़ा व्यवसायी भी बिना साख के काम नहीं चला सकता। कृषि, व्यापार, तथा उद्योग-धन्धे सभी में साख की जरूरत होती है। केवल दो दशाओं में ऋण भयंकर बोझ हो जाता है (१) ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए लिया गया हो, अथवा (२) जितना लाभ ऋण ली हुई पूँजी से हो उससे अधिक उसका सूद देना पड़े। अभाग्यवश भारतीय ग्रामीण का ऋण इन्हीं दो प्रकार का है। किसान अधिकतर खेती बारी, मुकदमे-बाजी, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों तथा अपने भरन पोषण के लिए ऋण लेता है। प्रत्येक दशा में उसे बहुत ज्यादा सूद देना पड़ता है। गांवों मे २५ प्रति से ३७ प्रति शत साधारणत: सूद लिया जाता है और कहीं कहीं तो ७५ से १०० प्रतिशत सूद लिया लिया जाता है। भारतीय अदालतों में ऐसे मुकदमे भी आते है जिनमें सूद १००० प्रतिशत से भी अधिक होता है। किसान ऋण ली हुई पूंजी पर इतना अधिक सूद देकर किसी प्रकार भी पनप नहीं सकता। किसी भी धन्धे में इतना लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

गृह-उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से तथा जनसंख्या के लगातार बढ़ते रहने से खेती बारी पर अवलम्बित जनसंख्या में दुगनी वृद्धि हो गई है। १६३० की मनुष्य गणना के अनुसार लगभग ७३ प्रतिशत जनसंख्या खेती बारी पर निर्भर है। देश में भूमि का अकाल हो गया है। किसान के पास इतनी भूमि नहीं है कि उसकी पैदावार से वह कुटुम्ब का भली-भाँति पालन कर सकें। उस पर खेती का धन्धा अनिश्चित है उदाहरण के लिए चार वर्षों में कम से कम एक बार फसल अवश्य नष्ट हो जाती है। इस कारण किसान की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। फसल कटने पर अपने लेनदारों को निबटाने पर किसान के वर्ष भर के लिए पूरा भोजन भी नहीं

बचता। उसकी दशा ऐसी शोचनीय हो गई है कि वह महाजन का पूरा सूद भी नहीं चुका सकता। फलतः किसान महाजन की दासता में बंध गया। ऋण किसान के जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया है। वह ऋणी परिवार में जन्म लेता है, पिता के मरने पर पैतृक ऋण का बोझ उसके सर पर आता है और अपने जीवन के अवसान काल में उसे और भी बढ़ा कर वह अपने पुत्र के सर पर लाद जाता है। ऐसे मनुष्य को यदि ग्राम सुधार और कृषि सुधार की बातें कपोल कल्पित प्रतीत हों तो आश्चर्य ही क्या है? किसान जानता है यदि किसी प्रकार उसके खेत की पैदावार बढ़ भी गई तो वह सब महाजन के घर जावेगी। उसको तो आधा पेट भोजन मुश्किल से मिलेगा।

प्रश्न यह है कि ऋण घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमिटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। इधर खेती की पैदावार का मूल्य घट जाने से किसानों के कर्ज का बोझ दुगना हो गया है। इस भयंकर बोझ को किसान किस प्रकार सहन कर सकेगा यह एक कठिन समस्या है। कर्जदार किसानों की संख्या कम हो ऐसी बात नहीं है लगभग ७० प्रतिशत किसान कर्जदार हैं।

वास्तव में देखा जावे तो पुराने कर्जे की समस्या टेढ़ी है। और जब तक पुराने कर्ज को किसान नहीं चुका देता तब तक वह महाजन के चंगुल से नहीं निकल सकता। किन्तु पुराना कर्ज किसान की सामर्थ के बाहर हो गया है। महाजन का सूद इस तेज़ी से बढ़ता है कि थोड़ी सी रक़म भी कुछ दिनों में बहुत तेज़ी से बढ़ जाती है, और महाजन उसके पास इतना छोड़ता ही नहीं कि वह अपने कुटुम्ब का पालन करके बचा सके। अतः किसान निराशावादी बन गया है और यही कारण है विवाह तथा अन्य

सामाजिक कार्यों में वह कर्ज लेकर अपनी शक्ति के बाहर व्यय कर देता है। क्योंकि वह जानता है कि कर्जदार तो वह रहेगा ही और महाजन को उसके पास सात आठ महीने का भोजन छोड़ना ही पड़ेगा। इससे अधिक वह किसी दशा मे नहीं छोड़ेगा तब वह बिरादरी वालों में हँसी क्यों करावे।

ग्रामीण ऋण की ओर भारत सरकार का ध्यान सबसे पहले दक्षिण किसान विद्रोह के समय गया। १८७७ और ७८ मे बंबई पूना तथा अन्य जिलों में, उसके बाद अजमेर, छोटा नागपूर, तथा मध्य भारत में किसानों ने बड़ा उत्पात खड़ा कर दिया। अनेक स्थानों पर किसानों ने महाजनों को मार डाला उनके मकान और विशेष कर उनके बही-खाते जला दिए। यह हाल देखकर सरकार ने एक कमीशन बिठाया, जिसने किसानों की भयंकर कर्जदारी को इस विद्रोह का मुख्य कारण बतलाया। तब से सरकार सिविल-ला में बराबर सुधार करती आ रही है जिससे किसान अत्यधिक सूद से बचाया जा सके। किन्तु सिविल ला के सुधार से किसान को अधिक लाभ नहीं हुआ, क्योंकि ९५ प्रतिशत सैकड़ा महाजनो को किसानों पर दावा ही नहीं करना पड़ता। दूसरे अदालतों के व्यय साध्य न्याय को गरीब किसान प्राप्त नहीं कर सकता। तदुपरान्त सरकार ने कानून बनाकर तकावी देना निश्चित किया। किन्तु तकावी को किसान लेना पसन्द नहीं करता। कारण यह है कि किसान को पटवारी इत्यादि की भेंट पूजा करने के उपरान्त जो तकावी मिलती है वह उसकी आवश्यकताओं के लिये काफी नहीं होती और उसे फिर महाजन के पास जाना पड़ता है इसके सिवा तकावी वसूल करते समय तहसील के कर्मचारी बड़ी कठोरता का व्यवहार करते हैं।

बहुत से प्रदेशों में किसानों के हाथ से भूमि निकल कर महाजनों के पास जाती देखकर सरकार ने उस पर रोक लगाने का विचार किया। इसी उद्देश्य से पंजाब, बुंदेलखंड तथा छोटानागपुर में प्रान्तीय सरकारों ने लैंड एलीनिएशन-ऐक्ट लागू कर दिया। इस ऐक्ट के अनुसार कुछ जातियों को खेतिहर मान लिया गया और यह नियम बना दिया गया कि खेती की भूमि को इन जातियों के अतिरिक्त दूसरी जातिवाला मनुष्य नहीं खरीद सकता। इसका फल यह हुआ कि किसानों की भूमि महाजनों के हाथ में जाने से तो बच गई, किन्तु किसान जातियों में ही नये महाजन उत्पन्न हो गये। अन्तत: सन १९०४ में सहकारी साख समितियों की स्थापना की गई। आज सह-कारिता-आन्दोलन को भारतवर्ष में चलते हुए ३६ वर्ष हो गए वह अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुआ है यह हमारे विषय से बाहर की बात है। किन्तु इतना तो प्रान्तीय कमेटियों ने तथा प्रान्तीय सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रारों ने भी स्वीकार किया है कि सहकारी साख समितियां किसान के पुराने ऋण को नहीं चुका सकतीं। पुराने ऋण की समस्या को हल करने के लिये और ही कोई प्रबंध होना चाहिये। सिद्धान्त रूप में यह ठीक भी है। साखी समितियां जिला सहकारी बैंकों से रुपया उधार लेती है। जिला बैंक जनता से थोड़े समय के लिये डिपाजिट लेकर पूंजी इकट्ठी करते हैं। पुराने कर्जे को चुकाने के लिए २० या ३० वर्षों के लिए कर्ज देना होगा थोड़े समय के लिए डिपाजिटों को लेकर अधिक ऋण देना जोखिम का काम है और बैंकिग के सिद्धान्त के विरुद्ध है। हां, यदि सरकारी साख समितियों का ठीक तरह से संगठन किया जाय तो समितियां थोड़े समय के लिये किसान को आवश्यक पूंजी दे सकती है।

पुराने ऋण को चुराने के लिये सहकारी भूमि बंधक बैंकों की उपयोगिता को सबों ने स्वीकार किया है। सहकारी भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) किसानों की भूमि को गिरवी रखकर उन्हे २० या तीस वर्षों के लिए ऋण दे देते है जिससे किसान अपना पुराना कर्ज़ा चुका सके। बैंक इस प्रकार बंधक रक्खी हुई भूमि की जमानत पर ऋण पत्र (Debentures) बैंच कर पूजी इकट्ठी करते हैं पंजाव, मदरास, बम्बई, सयुंक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तो में इन बैंकों को स्थापना हुई हैं किन्तु अभी उसकी संख्या बहुत कम है। इन बैंको को स्थापित हुए अभी वहुत समय नहीं हुआ है इस कारण इनके विपय में कुछ कहा नही जा सकता। डिबैंचर वेचकर बैंकों को पूंजी इकट्ठी करने मे कठिनाई न हो इस लिये किसी-किसी प्रान्त मे प्रान्तीय सरकार ने डिबैंचरों के सूद तथा मूल की अदायगी की गारंटी दे दी है। सैंट्रल-बैंकिंग-इनक्वायरी कमेटी की राय मे सरकार को केवल सूद की गारंटी देना चाहिये। योरोपीय देशों में भूमि बंधक बंको के डिबैंचर खूब बिकते हैं। भारतवर्ष मे सम्भवत. जनता उनको न खरीदे इसलिए गारंटी की आवश्यकता हुई। कमेटी की यह भी राय थी कि प्रत्येक प्रान्त मे एक प्रान्तीय बैंक स्थापित किया जाय जो प्रान्त के सब भूमि बंधक बैंकों के लिए डिबैंचर बेंचे। लेकिन भूमि बंधक बैंक केवल उन्हीं किसानों को कर्ज़ दे सकते हैं जिन्हें अपनी भूमि बंधक रखने का अधिकार है। जिन किसानों को अपनी भूमि गिरवी रखने का अधिकार नही है उनसे लाभ नहीं उठा सकेंगे।

शाही कृषि कमीशन ने पैतृक ऋण के विषय मे अपना मत देते हुए कहा है कि ग्रामीण ऋण बढ़ता जा रहा है इस ओर से उदासीन रहने का फल भयंकर होगा। इस समस्या को हल करने

के लिए कमीशन ने देहाती दिवाला ऐक्ट (Rural Insolvency Act) बनाने की सलाह दी। अब ऐसा कानून बन भी गया है। इस ऐक्ट का तात्पर्य यह है कि यदि कोई किसान कर्ज के बोझ से इतना दब गया हो कि उसकी सारी जायदाद बिक जाने पर भी उसका कर्ज अदा नहीं हो सकता तो वह अदालत को दिवालिया होने की अर्ज़ी दे सकता है। यदि अदालत उसके प्रार्थना पत्र को स्वीकार करले तो वह अपनी जायदाद लेनदारों को देकर वह ऋण मुक्त हो जावेगा और स्वतंत्र रूप से अपनी आजीविका उपार्जन कर सकेगा इस कानून से भी किसानों को अधिक लाभ नहीं हुआ क्योंकि अदालतों में न्याय इतना खर्चीला है कि महाजनों की थैली के सामने किसान को न्याय मिलना कठिन होता है। फिर इस कानून से वे ही किसान लाभ उठा सकते हैं जो एड़ी से चोटी तक कर्ज में डूबे हैं।

अभी प्रान्तीय तथा भारत सरकार इस समस्या पर विचार कर ही रही थीं कि काठियावाड़ की छोटी-सी रियासत भावनगर ने जिस प्रकार अपने किसानों को ऋण मुक्त कर दिया उससे सारे देश का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। भावनगर के दिवान सर प्रभाशंकर पट्टानी ने किसानों को ऋण मुक्त करने के उद्देश्य से एक आज्ञा निकाली कि जिस किसी महाजन का किसी भी किसान पर कर्जा हो वह राज्य को उसकी सूचना निश्चित तारीख तक दे दे नहीं तो उसका कर्ज गैर कानूनी घोषित कर दिया जावेगा। राज्य ने हिसाब लगा कर देखा तो भावनगर राज्य के तमाम किसानों का ऋण ८६,३८८७४ रु० निकला। स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टानी ने महाजनों के सामने एक प्रस्ताव रक्खा कि राज्य उन्हें तमाम ऋण के बदले २०,५६,४७३ रुपए देकर किसान को ऋण मुक्त कर देना चाहता है। पहले तो महा-

जन इस समझौते के लिए तैयार नहीं थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि राज्य किसान को ऋण मुक्त कर देने पर तुला हुआ है और हमारे द्वारा इस प्रस्ताव को न मानने का यह फल होगा कि राज्य ऐसा कानून बना देगा कि उन्हें अपना रुपया वसूल करना कठिन हो जावेगा तो वे राजी हो गए। राज्य ने २०,५६,४७३ रुपए देकर किसानों को ऋण मुक्त कर दिया। ध्यान रहे कि भावनगर का किसान उस तमाम कर्ज पर हर साल २५ लाख रुपए केवल सूद में दे देता था। राज्य ने एक साल की सूद की रकम से भी कम देकर किसान को सर्वथा के लिये ऋण मुक्त कर दिया। राज्य ने किसान से यह रकम किस्तों में वसूल करना आरम्भ कर दिया है और थोड़े दिनों में किसान अपना सारा कर्जा अदा कर देगा। इसका फल यह हुआ है कि किसान बिना किसी के कहे ही अच्छे हल, खाद, इत्यादि का उपयोग करने लगा है कुयें खोद कर उसने वैज्ञानिक ढंग की खेती को अपनाया है क्योंकि उसको अब विश्वास हो गया है कि उसकी पैदावार उसके पास रहेगी। और राज्य को एक लाभ यह हुआ कि अब राज्य को बिना किसी कठिनाई के मालगुजारी मिल जाती है। भविष्य में किसान फिर महाजन के चंगुल में न फँस जावें इसलिए राज्य ने एक कानून (खेड़ूत रक्षा कानून) बनाकर किसान की साख को बहुत सीमित कर दिया है। खेती बारी के लिए आवश्यक साख प्रबन्ध स्वयं राज्य ने किया है। राज्य ने तकावी देने का समुचित प्रबन्ध किया है और सूद बहुत कम लिया जाता है।

किन्तु भावनगर का प्रयोग एक देशी राज्य में हुआ है। जो कार्य एक देशी राज्य में सम्भव है वह प्रान्तों में उतना सरल नहीं है क्योंकि प्रजातंत्री शासन में प्रत्येक कार्य में इतना अधिक

झंझट और वैधानिक कार्यवाही करनी पड़ती है कि प्रत्येक कार्य में देर लगती है। फिर भी पिछले वर्षों में प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है और किसान की रक्षा के लिए बहुत से कानून बनाये हैं। उनमें निम्नलिखित कानून मुख्य हैं।

मनीलैंडर्स लायसैंस ऐक्ट (महाजन लायसैंस कानून)

बंगाल, आसाम, मध्य प्रान्त, बिहार, बम्बई, पंजाब और संयुक्तप्रान्त में महाजन पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों के कानूनों में थोड़ी सी भिन्नता है। परन्तु उनकी मुख्य-मुख्य बातें एक सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसैंस लेना होगा। कुछ प्रान्तों में लायसैंस लेना आवश्यक है और किसी किसी प्रांत मे यह महाजन की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु उन प्रान्तों में यदि महाजन ने लायसैंस नहीं लिया है तो वह अपने रुपये के लिए अदालत में नालिश न कर सकेगा। प्रत्येक लायसैंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्ज़दार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिख कर देना होगा। जब कभी कर्जदार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी। यदि कोई महाजन इन नियमों का पालन नहीं करेगा तो महाजन को कैद अथवा जुर्माने की सज़ा दी जायेगी।

इसके साथ ही प्रान्तीय सरकारों ने सूद की दर भी निश्चित कर दी है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में निश्चित की हुई सूद की दर इस प्रकार है।

	सुरक्षित ऋण		अरक्षित ऋण	
प्रान्त	सादा व्याज	दर सूद	सूद	दर सूद
मदरास	६$\frac{1}{4}$	..	६$\frac{1}{4}$	...
बम्बई	६	मना है	१२	मना है
बंगाल	१५	१०	२५	१०
पंजाब	१२	६	१८	१४
बिहार	६	मना है	१२	मना है
सी० पी०	७	५	१०	५
आसाम	१२$\frac{1}{2}$	मना है	१८$\frac{3}{4}$	मना है

संयुक्त प्रान्त में व्याज की दर ऋण ली हुई रक़म पर निर्भर है।

	सुरक्षित		अरक्षित	
रक़म	सूद	दर सूद	सूद	दर सूद
५०० रु से कम	५$\frac{1}{2}$	३	१०$\frac{1}{2}$	७$\frac{1}{2}$
रु० ५०१ से ५००० रु	४$\frac{1}{2}$	२$\frac{1}{2}$	८	६
रु० ५००१ से २०,०००	३$\frac{1}{2}$	२	६$\frac{1}{2}$	४$\frac{1}{2}$
रु० २०,००० से अधिक	२$\frac{1}{2}$	१$\frac{1}{2}$	५	३$\frac{1}{2}$

किन्तु ऊपर लिखी व्याज की दर सयुक्तप्रान्त में १६३० के वाद के लिए हुए ऋण पर ही लागू होंगी। इसके पहले लिए हुए ऋण पर सरकार ने दूसरी दर निश्चित की है।

१६३५ के चुनाव के उपरान्त नवीन शासन विधान के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को विवश होकर किसान की ओर ध्यान देना पड़ा क्योंकि वे किसानो की वोट से ही मत्री बने थे। अतएव प्रत्येक प्रान्त से किसानों के ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न कानून बना कर किया गया है। किसान को ऋण मुक्त करने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि उसके ऋण की रक़म को किसी प्रकार कम कर दिया जावे। इसके लिए दो

प्रकार के कानून बनाये गए हैं। एक प्रकार के कानून वह हैं जिनमें महाजन को ऋण की रक़म को कम करने के लिए विवश नहीं किया जा-सकता। दूसरे प्रकार के कानून वह हैं जिनमें महाजन को ऋण की रक़म कम करने के लिए विवश किया जाता हैं। पहले प्रकार के कानून के द्वारा सरकार ज़िलों मे ऋण समझौता बोर्ड (Debt conciliation Board) स्थापित करती है। बोर्ड के सामने महाजनों को अपने कागज़ तथा हिसाब पेश करना होता है और यदि किसी किसान के ४० प्रतिशत लेनदार बोर्ड के फैसले को मानलें (अर्थात बोर्ड जितनी कहे रक़म कम कर दें) तो बोर्ड उस किसान को एक सर्टिफिकेट दे देता है और वे लेनदार जिन्होंने बोर्ड का फैसला अस्वीकार कर दिया है उस समय तक किसान से अपनी रकम वसूल नहीं कर सकते जब तक कि उन लेनदारों की रक़म न अदा हो जावे जिन्होंने बोर्ड का समझौता स्वीकार कर लिया है। यदि कोई लेनदार बोर्ड के मांगने पर अपने कागज़ उपस्थित नहीं करता अथवा किसी किसान विशेष पर उसका कितना रुपया है नहीं बतलाता तो उसको भविष्य मे अपनी रक़म वसूल करने का कानूनी अधिकार नहीं रहता। इसका फल यह होता है कि बहुत से महाजन बोर्ड के फैसले को मान लेते हैं। इस प्रकार का कानून आसाम, पंजाब, बंगाल सी० पी० तथा मदरास में प्रचलित है। किन्तु कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने मदरास तथा सी० पी० में ऐसा कानून बना दिया कि जिससे महाजनों को रक़म कम करने के लिए विवश किया जाता है। इस प्रकार का कानून मदरास और सी० पी० में बन गया है। मदरास किसान रिलीफ ऐक्ट (Agriculturists Relief Act) के अनुसार १ अक्टूबर १९३२ के पहले लिए हुए ऋण पर १ अक्टूबर १९३७ तक का बकाया सूद माफ कर दिया गया है और केवल मूल ही देना होगा। यदि मूल अथवा

सूद की अदायगी के रूप में मूल से दुगनी रकम अदा कर दी गई हो तो सारा ऋण चुक गया मान लिया जावेगा। और यदि अदा की हुई रकम मूल ऋण के दुगने से कम हो तो शेष देकर किसान ऋण मुक्त हो जायगा। जो ऋण कि १ अक्टूबर १६३२ के उपरान्त लिया गया है उसके मूल पर ५ प्रतिशत सूद लगा कर कुल रक़म मालूम करली जाती है और उसमें से जितना ऋण किसान ने अदा कर दिया है उसको घटा कर जो रक़म शेष रहती है वह कर्जदार को देनी पड़ती है। इस रक़म पर किसान को भविष्य में केवल ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत सूद देना पड़ता है।

सी० पी० में कानून के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि यदि ऋण ३१ दिसम्बर १६२५ के पूर्व लिया गया हो तो ऋण की रक़म ३० प्रतिशत कम कर दी जावेगी। यदि ऋण १ जनवरी १६२६ के उपरान्त और अक्टूबर १६२६ के पहले लिया गया हो तो २० प्रतिशत, और यदि ऋण १६२६ (१ अक्टूबर) के बाद और ३१ दिसम्बर १६३० के पहले लिया गया हो तो १५ प्रतिशत ऋण कम कर दिया जायगा।

संयुक्तप्रान्त में भी एक कानून बन रहा है जिसके अनुसार महाजन को एक वर्ष के अन्दर अपने कर्जदारों पर नालिश कर देनी होगी नहीं तो फिर वह ऋण चुक गया मान लिया जायगा। इनके साथ ही अदालत रक्षित ऋण पर ५ प्रतिशत तथा अरक्षित ऋण पर ८ प्रतिशत के हिसाब से सूद लगाकर तथा दाम दुपत के नियम के अनुसार ऋण की रक़म कम कर देंगी।

जिन प्रान्तों में किसान को इस प्रकार की सुविधाएं नहीं दी गई हैं वहाँ भी समस्या बहुत भयंकर है किन्तु वहाँ स्थिर स्वार्थ वाले वर्ग इतने प्रबल हैं कि वहाँ अभी तक कुछ न हो सका। इन कानूनों के द्वारा भी किसान ऋण मुक्त हो सकेगा इसमें संदेह

है। यह सब योजनायें किसान को ऋण चुकाने की सुविधायें प्रदान करती हैं। हाँ मदरास और मध्य प्रान्त की सरकार ने उसके बोझ को भी कुछ कम करने का साहस किया है। किन्तु सुविधाओं की आवश्यकता तब होती कि जब किसान में ऋण चुकाने की क्षमता हो। जहाँ कर्ज़ चुकाने की ताक़त ही नहीं वहाँ सुविधाओं से क्या लाभ हो सकता है। जो किसान वष भर कठिन परिश्रम करने के उपरान्त केवल कुछ महीनों के लिये भोजन पाता हो, वस्त्र, औषधि, शिक्षा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं पर वह कुछ भी व्यय कर सकता हो यह किस प्रकार पुराने ऋण को चुका सकता है।

यदि हम चाहते है कि किसान महाजनों की आर्थिक दासता से स्वतंत्र होकर खेती बारी की उन्नति करे। ग्रामीण उद्योग-धन्धों की सहायता से अपनी आय़ बढ़ावे और मनुष्यों जैसा जीवन व्यतीत करे तो उसे ऋण मुक्त करना होगा। किसानों की समस्या ने आज ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया है कि उसको टुकड़े टुकड़े करके हल नहीं किया जा सकता। और न वह थिगले लगाने से ही हल हो सकती है। उसके हल करने के लिए प्रान्तीय सरकारों को दृढ़ता और साहस से काम करना होगा।

जिन किसानों की दशा इतनी शोचनीय हो गई हो कि वे अपने ऋण को अदा करने मे असमर्थ हों उन्हें ग्रामीण दिवालिया कानून की सुविधा देकर ऋण मुक्त कर दिया जाय। इसके लिए एक विशेष प्रकार का दिवालिया ऐक्ट बनाना होगा। उसके अनुसार किसान के बैल खेती के काम के औज़ार, ६ महीने का भोजन, बीज, लेनदार न ले सकेगा। शेष किसान के पास जो हो उसको लेनदारों को बांट कर ऋण मुक्त कर दिया जाय। हमारा यह अनुभव है कि अधिकतर किसान इस प्रकार के मिलेंगे। शेष किसान जो

कि अपने ऋण को कुछ हद तक दे सकते हों उनके ऋण को ५० प्रतिशत कम करके सरकार उसकी अदायगी की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। प्रश्न यह हो सकता है कि सरकार इतना रुपया कहाँ से लावेगी। इसके लिए दो तरीके हो सकते हैं। या तो सरकार इस काय के लिए ऋण ले और महाजनों को कम की हुई रक़म अदा करके किसानों को ऋण मुक्त करदे और वह रक़म किसानों से छोटी छोटी किश्तों में लगान के साथ वसूल कर ली जावे। अथवा सरकार कम की हुई रक़म के लिए प्रत्येक महाजन को बौंड दे दे जिस पर सरकार ३ प्रतिशत शूद दे और यह शर्त रहे कि सरकार जब चाहेगी तभी उन बौंडस का भुगतान कर देगी। तदउपरान्त प्रत्येक किसान को जिसका ऋण सरकार ने महाजन को दे दिया है अपनी भूमि भूमि-बंधक बैंक के पास गिरवी रखनी होगी और बैंक छोटी छोटी किश्तों में किसान से कुछ वर्षों में सारी रक़म वसूल कर लेगा।

किन्तु इससे पूर्व कि इस प्रकार की कोई योजना हाथ में ली जाय किसान के ऋण की जांच करवा लेना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक प्रान्त के विश्व-विद्यालयों तथा कालेजों के अर्थशास्त्र विभागों से सहायता ली जा सकती है।

जो कुछ भी हो यह निर्विवाद सत्य है कि किसान को बिना ऋण मुक्त किए उसकी दशा नहीं सुधर सकती। किन्तु ऋण मुक्त कर देने से ही समस्या हल नहीं होगी। एक क़ानून बना कर किसान की साख को बहुत मर्यादित कर देना होगा जिससे कि भविष्य में वह महाजन के चंगुल में न फँस सके। साथ ही सहकारी साख समितियों का जाल फैला कर सरकार को खेती बारी के लिए आवश्यक साख का उचित प्रबन्ध करना होगा।

कुछ लोग इस प्रकार की योजनाओं को अन्याय पूर्ण तथा समाजवादी कह कर बदनाम करते हैं। स्थिर स्वार्थ वाले लोग यह कहते नहीं थकते कि इससे वादे की पवित्रता नष्ट हो जायगी। किन्तु किसान के ऋण के सम्बन्ध में वादे की पवित्रता तथा न्याय की दुहाई देना स्वार्थ परता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। क्या अशिक्षित किसान से अंगूठा लगवा लेना न्याय है, क्या ज़रूरत के समय पर निर्धन किसान से जितना चाहे सूद ले लेना न्याय है, और क्या किसान का लगातार शोषण करना न्याय है। यदि ज़रूरत के समय किसान विवश होकर १००० रु० कर्ज लेकर १५० रुपये पर अँगूठा लगा देता है अथवा ७५ फी सैकड़ा सूद देने पर राजी हो जाता है तो इसमें वादे की पवित्रता का प्रश्न कहाँ उठता है।

स्थिर स्वार्थ वाला वर्ग तो किसानों को किसी प्रकार की भी सुविधा दिए जाने पर इसी प्रकार शोर मचाएगा। अतएव प्रान्तीय सरकारों को इसकी तनिक भी चिन्ता न करके इस अत्यन्त आवश्यक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या को हल कर देना ही चाहिए।

छठवाँ परिच्छेद

ग्रामीण-उद्योग-धन्धे

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। कृषि यहाँ का महत्वपूर्ण धन्धा रहा है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस देश में अन्य उद्योग-धन्धों का अभाव रहा हो। प्राचीन काल में, तथा मध्यमिक काल में भी, भारतवर्ष के कारीगरों द्वारा बनी हुई वस्तुयें योरप के बाज़ारों में बहुत मूल्य पर बिकती थीं, किन्तु ईस्ट इन्डिया कम्पनी की व्यापार नीति ने क्रमशः हमारे धंधों को नष्ट कर दिया और धंधों में लगी हुई जन संख्या विवश होकर खेती बारी की ओर चली आई। इँगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के उपरांत बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किये गए। अस्तु, इँगलैण्ड में व्यवसायिकों को ऐसे देशों की आवश्यकता प्रतीत हुई, जो कच्चा माल उत्पन्न करे और इँगलैंड में बने हुए पक्के माल के ग्राहक बनें। क्रमशः भारतवर्ष ऐसी ही अवस्था में पहुँच गया।

गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट होने से तो जनसंख्या खेती-बारी की ओर आई ही साथ ही भारतवर्ष की जनसंख्या भी बढ़ती गई और दूसरे किसी धंधे के न होने के कारण वह भी खेती में लग गई।

इसका फल यह हुआ कि खेती बारी पर निभर रहने वाली जनसंख्या बहुत बढ़ गई। इस समय फ़ी किसान औसत भूमि तीन एकड़ है। बहुत से प्रान्तों में अधिकतर किसानों के पास तीन एकड़ भूमि से भी कम रह गई है। इतनी कम भूमि पर खेती-बारी करके किसान अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण भली प्रकार नहीं कर सकता। यही नहीं, गांवों में एक ऐसा समुदाय

उत्पन्न हो गया है, जिसके पास खेती के लिए भूमि बिलकुल नहीं है। यदि किसी के पास एक या दो छोटे टुकड़े हैं भी तो वह उनसे उत्पन्न अन्न पर दो-चार महीने भी नहीं काट सकता। यह वर्ग मजदूरी करता है। फ़सल बोने और काटने के समय इन्हें दूसरों की खेतों पर मजदूरी मिल जाती है।

अर्थशास्त्र के जाननेवालों तथा शाही कृषि-कमीशन की राय है कि साधारण किसान वर्ष में चार महीने बेकार रहता है। कारण, खेती का धंधा ऐसा है कि इसमें वर्ष-भर लगातार काम नहीं रहता। किन्हीं दिनों में किसान को अधिक कार्य करना पड़ता है, किन्हीं दिनों में कम-तथा कभी वह बिलकुल बेकार रहता है। और गांव के मजदूरों को तो वर्ष में ६ महीने से अधिक काम मिलता ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि आठ महीने काम करके कोई भी बारह महीने का भोजन नहीं पा सकता। भारत में तो जनसंख्या का भूमि पर अत्यधिक भार है, जिसके कारण भूमि इतनी जनसंख्या का पालन-पोषण नहीं कर सकती। यूरोप तथा अमेरिका जैसे देशों में भी, जहाँ किसानों के पास बड़े-बड़े फार्म हैं, किसान केवल खेती पर ही अवलम्बित नहीं रहता। वह ग्राम-उद्योग-धन्धों के द्वारा अपनी आय को बढ़ाता है। जब इन देशों में, जहाँ भूमि की कमी नहीं है—प्रत्येक किसान के पास खेती के लिए यथेष्ट भूमि है, ग्राम-उद्योग-धंधों की आवश्यकता होती है, तब भारत वर्ष में, जहाँ भूमि का अकाल हो—किसान बिना ग्राम-धंधों के किस प्रकार जीवित रह सकता है?

बढ़ती हुई जनसंख्या के भार को भूमि पर से हटाने के लिए अर्थशास्त्र के विद्वानों ने अभी तक ऐसा कोई उपाय नहीं बतलाया, जिसको सबों ने स्वीकार कर लिया हो। मतभेद अवश्य है,

और भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न उपाय बतलाये हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निम्नलिखित चार उपाय हमारे सामने रक्खे गये हैं—

(१) प्रवास—अन्तरप्रान्तीय प्रवास, तथा विदेशों को प्रवास। इसका अर्थ यह है कि घने आबाद प्रांतों की जनसंख्या कम आबादी वाले प्रान्तों में चली जाय, जहाँ भूमि अधिक हो तथा विदेशों में जाकर यहाँ के लोग बसें।

(२) मिलें तथा कारखाने अधिक संख्या में स्थापित किये जायँ, तथा इस देश में आधुनिक ढंग से औद्योगिक उन्नति इस शीघ्रता से की जाय कि गावों की जनसंख्या काम पा सके।

(३) गहरी खेती (Intensive Cultivation) की जाय।

देहात के उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित किया जाय।

अब देखना यह है कि कि हमारे देश के लिए कौन-सा उपाय उपयुक्त होगा। प्रवास से समस्या हल हो सकेगी, इसमें संदेह है; क्योंकि भारतवर्ष में बर्मा *और आसाम को छोड़कर अन्य सब प्रांतों में वहाँ की भूमि की उत्पादक शक्ति तथा भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए जनसंख्या यथेष्ट है। जब से आसाम में चाय के बाग़ों की उन्नति हुई है, तब से हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष मनुष्य वहाँ जाकर बसते रहे हैं। अब आसाम भी अधिक जनसंख्या को अपने यहाँ स्थान न दे सकेगा। बर्मा में अब भी भूमि को देखते जनसंख्या कम है; किन्तु वहाँ भूमि अधिकतर बनों से अच्छादित तथा पथरीली है। अस्तु, भारतीय किसान को वहाँ जाकर खेती-बारी के योग्य भूमि तैयार करने

*बर्मा अब भारतवर्ष के अन्तर्गत नहीं है।

के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता है, जिसका उसके पास नितान्त अभाव है। इसके अतिरिक्त जब बर्मा का भारत से विच्छेद कर ही डाला गया है, तब भारतीय जनसंख्या को बसने की सुविधाएँ मिलने में भी हमें संदेह है। यदि बर्मा भारतवासियों के लिए अपने द्वार खुले रक्खे, तो भी भारतवर्ष को कुछ अधिक लाभ न हो सकेगा। विदेशों में प्रवास करने का तो भारतीयों के लिए प्रश्न ही नहीं उठता। निर्धन भारतीयों को भला अपने यहाँ कौन घुसने देगा? अमेरिका, कनाडा, न्यूज़ीलैंड तथा आस्ट्रेलिया ने तो एशियावाशियों के आने की मनाही कर ही दी है। दक्षिण अफ्रीका, केनिया तथा जञ्जीबार में भारतीयों की क्या दशा है, यह किसी भारतीय से छिपा नहीं। यदि इस समय कोई उपनिवेश भारतीयों को अपने यहाँ बुलाना चाहता है, तो वह ब्रिटिश-गायना है। किन्तु कौन कह सकता है कि वहाँ की सरकार भी अपने उपनिवेश की भारतीय मज़दूरों की सहायता से उन्नति कर चुकने के उपरान्त उसके साथ अपमान-जनक व्यवहार नहीं करेगी। अब यह तो निश्चय ही हो गया कि प्रवास से यह समस्या हल नहीं हो सकती।

कुछ अर्थशास्त्रज्ञों का विचार है कि यदि भारतवर्ष में बड़े-बड़े कारखाने अधिक संख्या में खोले जायँ, आनुनिक ढंग पर उद्योग-धंधों की उन्नति की जाय, तो बहुत-सी जनसंख्या उनमें काम पा सकती है। इन विद्वानों के कथन में कुछ सत्य अवश्य है। किन्तु ऐसे लोग जब भारतवर्ष की आर्थिक समस्या को हल करने के लिए यह उपाय बतलाते हैं, तब सम्भवतः वे भारतवर्ष की वास्तविक परिस्थिति को भुला देते हैं। भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के भीमकाय कारखानों का श्रीगणेश सन् १८५० के बाद हुआ। १८६० तक नाम-मात्र को कुछ इने-गिने कारखाने ही खुले; किन्तु १८६० के उपरान्त मिलें तथा कारखाने अधिक संख्या में खोले

गये, तथा १८७० के उपरांत तो मिलों की बाढ़-सी आ गई। आज भारतवर्ष में १०,००० के लगभग फैक्टरियाँ काम कर रही हैं। ध्यान रहे, फैक्टरीऐक्ट के अनुसार वह स्थान फ़ैक्टरी मान लिया जाता है, जहाँ उत्पादन-कार्य शक्ति (भाप, बिजली, गैस, तेल) की सहायता से होता हो, कम-से-कम १० मज़दूर काम करते हैं। भारतवर्ष की फ़ैक्टरियों में लगभग ४२ लाख मज़दूर काम करते हैं। इनमें उन फ़ैक्टरियों के मज़दूरों की संख्या भी सम्मिलित है, जो वर्ष में केवल कुछ महीने ही चलती हैं। जैसे शक्कर के कारख़ाने, जूट तथा रुई के पेंच, गेहूँ पीसने के कारखाने, तिलहन से तेल निकालने के कारख़ाने चाय तथा कहवा के कारखाने इत्यादि। औद्योगिक उन्नति के लिए किन बातों की आवश्यकता है, यह तो इस लेख के क्षेत्र के बाहर की बात है। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि जब लगभग सत्तर वर्षों की औद्योगिक उन्नति के उपरांत मिलें हमारे देश की समस्त जनसंख्या के एक प्रतिशत को ही काम दे पाई, तब निकट भविष्य में यह आशा करना कि कारखानों में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग काम पा जायगा, दुराशामात्र है। भारतवर्ष की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि औद्योगिक उन्नति धीरे-धीरे ही होगी। साथ ही भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति का लक्ष्य भारतवर्ष की बाज़ार की मांग को देखते हुए स्थिर करना होगा। भारतवर्ष में कारखाने यदि इस उद्देश्य को लेकर खोले जायँ कि वे विदेशी बाज़ारों में अपने माल को बेंच सकेंगे तो यह भूल होगी; क्योंकि प्रत्येक देश आज औद्योगिक देश बनने का प्रयत्न कर रहा है, और दूसरे देशों के माल पर आयात कर लगाकर अपने धंधों को संरक्षण प्रदान कर रहा है। फिर पूंजी की कमी, वैज्ञानिक खोज का अभाव, औद्योगिक

तथा व्यावसायिक शिक्षा देश में न होने और मशीनरी के लिए दूसरे देशों पर अवलम्बित रहने के कारण यह आशा करना कि थोड़े समय में ही करोड़ों मनुष्यों को कारखाने काम दे सकेंगे, व्यर्थ है। फिर यदि ऐसा हो भी सके, तो देश के लिए यह परिवर्तन लाभदायक न होगा।

यदि मान भी लिया जाय कि प्रवास तथा कारखाने गाँवो में निवास करनेवाली जनसंख्या को कम कर देंगे, तो भी समस्या हल नही होती। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गांवों की समस्या यह नहीं है कि जनसंख्या को सर्वदा के लिए गांवो से हटाकर बाहर भेज दिया जाय। कारण, फसल काटते तथा बोते समय तो गाँवों में इतना काम होता है कि वहाँ मजदूरों का अकाल पड़ जाता है, और, शहरो से गाँवों में लोग मजदूरी करने आते हैं। यदि जनसंख्या को गाँवों में हटा दिया जायगा, तो खेती-बारी के लिए यथेष्ट आदमी नहीं मिलेंगे। प्रश्न हो सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा इत्यादि देशों में खेती-बारी किस प्रकार होती है ? बात यह है कि इन देशों में किसानों के पास यहाँ की भाँति छोटे-छोटे खेत नही हैं। इन देशों में ४०० एकड़ से कम के फ़ार्म सम्भवतः बहुत कम होंगे, और १००० एकड़ के फ़ार्म तो बहुत से मिलेंगे। किसान थोड़े-से मजदूर को रखकर सब काम मशीनों के द्वारा करता है। जुताई, बुआई, कटाई तथा सिंचाई का सब काम भाप अथवा बिजली से चलने वाले यन्त्रों के द्वारा किये जाते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि यदि भारतवर्ष में भी इसी प्रकार के यन्त्रों द्वारा बड़े-बड़े फार्मों पर खेती की जाने लगे, तो १२ करोड़ के लगभग ग्रामीण बेकार हो जायँगे। भला उस राष्ट्रीय बेकारी को कैसे हल किया जा सकेगा ? अस्तु, यह तो निश्चय हो गया कि गाँवों से जनसंख्या को हटा देने से काम नहीं बनेगा। साथ

ही हमे यह भी ज्ञात है कि खेतों में लगा हुआ मनुष्य वर्ष में चार महीने के लग-भग बेकार रहता है।

अब दो उपाय और रह गये, जो कि समस्या को हल करने के लिए बतलाये जाते हैं। गहरी खेती तथा देहात के उद्योग-धंधे। शाही कृषि कमीशन ने सोलहवें परिच्छेद में इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। परिस्थिति का अनुशीलन करने के उपरान्त कमीशन ने अपना निश्चित मत यह दिया है कि यह समस्या केवल गहरी खेती (Intensive cultivation) के द्वारा ही हल हो सकती है। कृषि-कमीशन ने प्रवास तथा कारखानों के द्वारा समस्या हल न होने की बात तो कही ही है, साथ ही देहाती उद्योग-धंधों के विषय में भी यह सम्मति दी है कि उनके द्वारा भूमि पर जनसंख्या का भार हलका हो सकेगा, इसमें संदेह है। कृषि-कमीशन को देहाती उद्योगधंधों के विषय में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वे मिलों की प्रतिस्पर्धा में टिक न सकेंगे। कृषि-कमीशन ने यह बात भी स्वीकार की है कि किसान को गाँव के बाहर ऐसा काम अधिकतर नहीं मिल सकेगा, जिससे वह बेकारी के दिनों में कुछ मजदूरी करके कमा सके। इस प्रकार कमीशन की सम्मति मे गहरी खेती ही इसका एक-मात्र उपाय है।

खेती दो प्रकार की होती है, गहरी खेती तथा विस्तृत खेती (Extensive Cultivation)। विस्तृत खेती में श्रम और पूँजी कम लगा कर भूमि से ही उत्पादन-कार्य अधिक लिया जाता है। गहरी खेती का अर्थ यह है कि थोड़ी भूमि पर अधिक खाद, अच्छा बीज डालकर खूब जुताई करके वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाय। इसी कारण विस्तृत खेती उन देशों में की जाती है, जहाँ भूमि तो बहुत होती है, किन्तु जन संख्या कम होती है;

और गहरी खेती उन देशों मे होती है जहाँ भूमि कम होती है तथा जनसंख्या अधिक ।

सिद्धान्त रूप से यह बिलकुल ठीक है कि भारतवर्ष में गहरी खेती होनी चाहिये, और भविष्य में यही लक्ष्य हमारे सामने अवश्य रहना चाहिये। किन्तु आज की परिस्थिति को देखते हुए यह कहना कि भारतीय किसान गहरी खेती को अपनावेगा, वास्तविकता से अनभिज्ञता प्रकट करना है। गहरी खेती के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। खाद, हल तथा अन्य यन्त्र, बीज तथा बैल सब बढ़िया होने चाहिए। किसान को सिंचाई के लिए कुएँ खुदवाने की आवश्यकता होगी। इन सब के लिए वह पूँजी कहाँ से लावेगा? इस समय जबकि वह अपनी छोटी-सी भूमि पर कम से कम पूंजी लगाकर विस्तृत खेती करता है, तब भी उसे महाजन से ऋण लेने की आवश्यकता होती है। महाजन वैज्ञानिक ढङ्ग से गहरी खेती करने के लिए अधिक पूंजी नहीं देगा। यदि मान भी लिया जाय कि महाजन किसान को यथेष्ट पूँजी दे सकेगा, तो वह पूँजी लेकर किसान को क्या लाभ होगा? जो लोग किसान के ऋण के विषय में जानते हैं, वे समझते हैं कि किसान महाजन का क्रीत दास बन गया है। किसान भली भाँति जानता है कि यदि वह महाजन से अधिक पूँजी लेकर अच्छा बीज, खाद, यन्त्र तथा पशु मोल ले, और गहरी खेती करके पैदावार को बढ़ा ले तो उससे उसे तनिक भी लाभ न होगा। बढ़ी हुई पैदावार महाजन ले जायगा। हमारे गांव में सूद की दर इतनी भयङ्कर है कि भारतवर्ष में ही क्या, संसार के किसी भी देश में कोई भी धन्धा पूँजी पर इतना अधिक सूद लेकर पनप नहीं सकता। कहा जा सकता है सहकारी साख-समितियां किसान को उचित सूद पर पूँजी दे सकती हैं। जो भारतीय सहकारिता आन्दोलन की गति विधि से

परिचित हैं, वे जानते हैं कि आज तीस वर्षों के उपरान्त भी सहकारी साख-समितियां ग्रामीण जनता को केवल पांच फी सदी पूंजी देती हैं, और सूद की दर १५ फी सदी से ऊपर होती है। यदि थोड़ी देर के लिए यह भी मान लिया जाय कि पूंजी का प्रबंध हो सकता है (जो कठिन है) तो भी किसान का अपनी सारी शक्ति और पूंजी केवल खेती में लगा देना आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। बात यह है कि खेती का धन्धा अत्यन्त अनिश्चित होता है। किसान अच्छा से अच्छा बीज और खाद डाले तथा घोर परिश्रम करे, फिर भी वह फसल को नष्ट होने से रोक नहीं सकता। समय पर वर्षा न होना, कुसमय वर्षा हो जाना, अति वृष्टि, टिड्डी, फसलों के शत्रु कीड़े तथा हवा और ओले सभी फसल को नष्ट कर देते हैं, और किसान गहरी खेती करने पर भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता कि उसकी फसल अच्छी ही होगी। हो सकता है कि वैज्ञानिक ढंग के खेती करने पर भी खेत में कुछ भी पैदा न हो, फसल मारी जाय। हमारे देश में खेती और भी अनिश्चित है; क्योंकि यहाँ वर्षा बहुत ही अनिश्चित है। साधारणतः तीन फसलों में एक फसल खराब होती है। किन्तु भारतवर्ष के सूखे प्रान्तों (पश्चिमीय राजपूताना, फ्रांटियर, सिंध, तथा विलोचिस्तान) में तो तीन वर्षों में केवल एक ही फसल अच्छी होती है। ऐसी परिस्थिति में किसान स्वभावतः खेतों में अधिक पूंजी लगाने को तैयार न होगा। इसके अतिरिक्त और भी कारणों से किसान खेती में अधिक पूंजी नहीं लगावेगा। उसको भय रहेगा कि पैदावार के बढ़ने से लगान बढ़ जायगा। अधिकतर किसान की भूमि बंधक रक्खी हुई है। यदि पैदावार बढ़ जायगी, तो साहूकार (लेनदार) किसान से भूमि लेकर बेंच देगा। किसान को यह भी भरोसा नहीं होता कि पैदावार अधिक होने से उसे लाभ

होगा। किसानों को फसल कटते ही महाजन, जमींदार तथा सरकारी कर्मचारी घेरने लगते हैं। किसान को पैदावार उस समय बेंचनी पड़ती है, जब कि बाजार भाव मंदा होता है। यदि पैदावार गहरी खेती के कारण अधिक होने लगी, तो एक साथ बाजार में बहुत अधिक माल आने से भाव और भी गिर जायगा। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में, किसान गांव के महाजनों, बाजार के दलालों, आढ़तियों तथा व्यापारियों के द्वारा भी लूटा जाता है, और अधिकतर लाभ बीच के लोग ही हड़प कर जाते हैं। किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिलता। यदि भविष्य में भारतीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें इन सब कठिनाइयों को क़ानून बना कर रोक दें, और किसानों को अपनी पैदावार का उचित मूल्य मिलने लगे, तो उस दशा में कृषि-कमीशन इसका कोई उपाय नहीं बता सका कि फसल नष्ट होने पर किसान क्या करे। ग्रामीण अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत कलैवर्ट महोदय ने ठीक ही लिखा है संसार के किसी भी देश का किसान केवल खेती-बारी पर निर्भर रहकर सुचारु रूप से जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। फिर यह असम्भव बात भारतीय किसान सम्भव कैसे कर सकता है ?

अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा जापान इत्यादि देशों मे किसान खेती बारी के अतिरिक्त कोई-न-कोई ऐसा धन्धा अवश्य करता है, जिससे उसकी कुछ अतिरिक्त आय होती रहे। भारतवर्ष में तो देहाती-उद्योग-धन्धों की अत्यन्त आवश्यकता है; क्योंकि यहां तो आये दिन फसल नष्ट होती रहती है, अकाल पड़ते रहते हैं, साथ ही किसानों के पास खेती के योग्य भूमि भी बहुत कम है। अकाल पड़ने पर फसल नष्ट हो जाने से किसान का एक आश्रय तो बिलकुल ही जाता रहता है। यदि उसके पास कोई

जीवन-निर्वाह का दूसरा आश्रय हो तो उसकी दशा इतनी दयनीय न हो, जितनी कि आज है।

संतोष का विषय है कि महात्माजी के नेतृत्व में राष्ट्र-निर्माण के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य का श्रीगणेश हो रहा है। हमारे गांवों का जो आर्थिक शोषण हो रहा है, उसको रोकने तथा किसानों को महाजनों की आर्थिक दासता से मुक्त करने का यही एक मात्र उपाय है। जब किसान की आय हम धन्धों के द्वारा बढ़ा देंगे, तभी वह गहरी खेती करने के लिए तैयार होगा।

ग्रामीण उद्योग धन्धों की आवश्यकता तो केवल इस लिए है कि किसान को खेती से यथेष्ट आय नहीं होती वह इन धन्धों के द्वारा अपनी आय की वृद्धि कर सकेगा। अतएव ऐसा कोई धन्धा उसे नहीं दिया जा सकता जो कि उसके मुख्य धन्धे के काम में अड़चन डाले।

अस्तु ग्रामीण उद्योग धन्धों में निम्नलिखित गुण होना आवश्यक है।

१—धन्धा ऐसा होना चाहिए कि जो खेती के काम में बाधक न हो अथवा जब खेत पर अधिक कार्य हो तब उसको बिना किसी हानि के छोड़ा जा सके।

२—धन्धे को चलाने के लिए किसान को अधिक सीखने की आवश्यकता न पड़े। यदि धन्धा ऐसा हुआ जिसमें अधिक कुशलता की आवश्यकता हुई तो किसान उसकी शिक्षा कहाँ और कैसे लेगा।

३—धन्धे में यदि कच्चे पदार्थ की आवश्यकता हो तो ऐसा होना चाहिये कि जो गांव में ही उत्पन्न होता हो। नहीं तो किसान को कच्चा माल व्यापारी अथवा बनिये से खरीदना होगा और उसको बहुत मंहगे दामों पर मिलेगा।

४—उस धन्धे की चीज़ ऐसी होनी चाहिए कि जिसकी मांग सर्व साधारण में हो कि जिससे कि उसे माल बेचने में अधिक कठिनाई न हो। यदि गाँव में ही उसकी खपत हो सके तो बहुत अच्छा है।

५—धन्धा ऐसा होना चाहिये जिसके चलाने मे अधिक पूँजी की आवश्यकता न हो। यदि अधिक पूँजी की आवश्यकता हुई तो वह धंधा निर्धन किसान के उपयुक्त न होगा।

६—साथ ही जहाँ तक हो ग्रामीण उद्योग धंधे ऐसे चुने जावें जिनकी प्रतिस्पर्धा मिलों मे बने हुए माल से न हो।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए। ग्रामीण उद्योग धंधों और कुटीर उद्योग धन्धों में भेद है। साधारणतः लोग इन दो प्रकार के धन्धों में कोई भेद नहीं मानते। कुटीर उद्योग धन्धे गाँवों में भी हो सकते हैं और शहरों मे भी हो सकते हैं। किन्तु कुटीर उद्योग धन्धे गौण धन्धों के रूप में नहीं चलाये जा सकते वे तो स्वयं मुख्य धन्धे हैं। एक किसान बुनकर के धन्धे को अपना गौण धन्धा नहीं बना सकता हाँ वह कातने का काम कर सकता है। कपड़ा बुनने का काम स्वतंत्र रूप से ही किया जा सकता है। कुटीर धन्धों की उन्नति का प्रश्न एक अलग प्रश्न है और हम उसके विषय में आगे चल कर लिखेंगे।

हाँ तो ऊपर लिखे हुए गुणों का ध्यान रखते हुए नीचे लिखे हुए धंधे गौण धन्धों के रूप में किसान के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

१—वे धन्धे जो भोज्य पदार्थ उत्पन्न करते हैं—

उदाहरण के लिए दूध घी मक्खन का धन्धा, अंडे का धन्धा, फल उत्पन्न करने का धन्धा, शाक उत्पन्न करने का धन्धा, शहद उत्पन्न करने का धन्धा इत्यादि।

इन धन्धों से एक लाभ तो यह होगा कि किसान को पौष्टिक भोजन मिल सकेगा। आज दिन भारतीय ग्रामीण का भोजन जितना निम्नश्रेणी का है उतना सम्भव है किसी दूसरे देश के किसान का न हो। अतएव इन धन्धों की उन्नति से कम से कम यह लाभ तो अवश्य होगा कि किसान का भोजन बहुत पौष्टिक हो जावेगा। जो कुछ वह अधिक उत्पन्न करेगा वह बेंच कर किसान कुछ आय प्राप्त कर सकेगा। यह धन्धे खेती के काम में बिलकुल बाधक नहीं होते। घर के स्त्री बच्चे इनकी देख भाल कर सकते हैं और अवकाश के समय किसान भी इनकी देख भाल कर सकता है। पश्चिमीय देशों में प्रत्येक किसान दूध, अंडे और फल का धन्धा करता है। इस धन्धों का एक विशेष लाभ यह भी है कि उनके द्वारा किसान को प्रति दिन कुछ आय हो जाती है जब कि खेती से वर्ष के अन्त में आय होती है।

दूध का धंधा—

भारतवर्ष में जहाँ की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है दूध का राष्ट्र के भोजन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु भारतवर्ष जो कभी दूध के लिए प्रसिद्ध था आज बहुत कम दूध उत्पन्न करता है। यह अनुमान किया गया है कि भारतवर्ष में प्रति मनुष्य प्रति दिन चौथाई छटाँक दूध की उत्पत्ति होती है। भारतवासियों से स्वास्थ्य के लिये दूध की उत्पत्ति की वृद्धि आवश्यक है। परन्तु देश में गाय की नस्ल इतनी बिगड़ गई है कि वह दूध देने वाला पशु नहीं रहा। अब दूध के लिए देश को भैंस पर निर्भर रहना पड़ता है। यह कितना बड़ा राष्ट्रीय अपव्यय है कि खेती के लिये बैलों को पैदा करने का काम गायों से लिया जावे और दूध के लिए भैंस को पाला जावे। साधारण निर्धन किसान से

यह आशा करना व्यर्थ होगा कि वह गाय और भैंस दोनो ही पाले। अतएव देश की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि गाय नस्ल में इस दृष्टि से सुधार हो कि वह अधिक से अधिक दूध दे और खेती के लिए अच्छे बैल उत्पन्न करे। किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि देश में चारे की कमी पूरी की जावे और नस्ल पैदा करने का वैज्ञानिक ढग काम में लाया जावे।

दूध के धंधे की समस्या केवल गाय की नस्ल की उन्नति कर देने से ही हल नहीं हो जावेगी। किसान अपने दूध मक्खन और घी को उचित मूल्य पर बेच सके इसके लिये इस बात की आवश्यकता होगी कि दूध सहकारी समितियों की स्थापना की जावे जिससे कि किसान अपने दूध को उचित मूल्य पर बेच सके। जिस प्रकार से डैनमार्क का किसान दूध सहकारी समितियों के कारण उत्तम दूध तथा मक्खन उत्पन्न करने तथा उसे उचित मूल्य पर बेचने में सफल हुआ है उसी प्रकार भारतीय किसान इस धन्धे को सफलता पूर्वक चला सकता है।

अंडे का धन्धा—

मुर्गी पाल कर अन्डे बेचने का धन्धा भी किसान के लिये एक उपयोगी धन्धा सिद्ध हो सकता है यद्यपि हिन्दुओं में उच्च जाति के लोग इस धन्धे को नहीं अपना सकते परन्तु ईसाई मुसलमान तथा हिन्दुओं मे अछूत कहे जाने वाले लोग इस धन्धे को कर सकते हैं। यहां जिस प्रकार गाय की नस्ल खराब हो गई उसी प्रकार मुर्गी की नस्ल खराब हो गई। किन्तु मुर्गी की नस्ल का सुधार आसानी से हो सकता है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में अच्छी नस्ल के मुर्गे मुर्गियों के सम्बन्ध से मुर्गी की नस्ल को सुधार करने का प्रयत्न किया जा रहा है। मुर्गी पालने का धन्धा उन प्रदेशों के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ बहुधा

दुर्भिक्ष पड़ता है। घर के बच्चे इस धंधे को सफलता पूर्वक चला सकते हैं। यह अनुमान किया गया है कि कुटुम्ब अंडों को बेंच कर वर्ष में ५० रु० से १५० रु० तक कमा सकता है। योरप में डेनमार्क तथा अन्य देशों मे किसान प्रति वर्ष अंडे बेंच कर यथेष्ट धन कमाता है। पूर्वीय देशों में चीनी किसान इस धन्धे के द्वारा खूब धन कमाता है। मुर्गी पालने से लाभ यह होगा कि किसान को फलों के पेड़ों के लिए बहुत बढ़िया खाद प्राप्त हो जावेगी। हर एक मुर्गी वर्ष में ४० से ८० पौंड तक खाद तैयार करती है। प्रश्न हो सकता है कि यदि धन्धा अधिक उन्नति कर गया तो उसके लिए बाजार कहाँ मिलेगा पहले तो देश में हीं अंडे खाने वालों की संख्या यथेष्ट है दूसरे अन्य देशों को अंडा भेजा जा सकता है। यदि सुविधाओं के अभाव में ताजा अंडा न जा सके तो उसका पाउडर बना कर वह विदेशों को भेजा जा सकता है।

फलों की पैदावार—

प्रत्येक देश में फल उत्पन्न करने का धन्धा एक महत्वपूर्ण धन्धा है। अभी तक भारतवर्ष में फलों को उत्पन्न करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। भारतवर्ष में जहाँ कि अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है फलों की अधिक पैदावार की बहुत आवश्यकता है। फलों की देश में अधिक उत्पत्ति होने से दो लाभ होंगे। एक तो किसान को फल खाने को मिल सकेंगे, दूसरे वह उनको बेंच कर कुछ पैसे पा सकेंगे। यदि उसे फल खाने को ही मिल जावे तो भी राष्ट्र का कितना कितना हित होगा यह प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है। फलों की पैदावार बंजर भूमि पर भी हो सकती है अस्तु उस भूमि का इस प्रकार उपयोग हो सकता है। साथ ही जब बड़ी संख्या में फलों के वृक्ष लगाये जावेंगे

तो उनकी पत्तियों का उपयोग खाद के लिए हो सकता है। साथ ही गाँवों में ईंधन की समस्या कुछ हद तक हल हो सकती है। कुछ फलों के वृक्ष ऐसे होते हैं जिन्हें अधिक जल की आवश्यकता नहीं होती उनको ऐसे प्रन्तों में उत्पन्न किया जा सकता है जहां पानी कम बरसता है।

तरकारियों को पैदा करना—

बाजार के लिए तरकारी उत्पन्न करना साधारण किसान के लिए सम्भव नहीं है वह एक स्वतन्त्र धन्धा है, परन्तु घर के उपयोग के लिए किसान बड़ी आसानी से शाक उत्पन्न कर सकता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि देश में गृह-बाटिका-आन्दोलन चलाया जावे। प्रत्येक ग्रामीण अपने मकान से मिली हुई भूमि पर फूल और तरकारी की एक छोटी सी बाटिका लगावे। घर में जो पानी काम में आता है उसका उपयोग बाटिका में कर लिया जावे। इससे गाँव के मकानों में गन्दगी भी न होगी; मकान की सुन्दरता बढ़ जावेगी और किसान को शाक खाने को मिल जावेगा।

शहद उत्पन्न करने का धंधा—

भारतीय ग्रामों में शहद उत्पन्न करने का धन्धा भी सफलता पूर्वक चलाया जा सकता है। शहद की मक्खी को पाल कर उनसे शहद प्राप्त किया जा सकता है। शहदी की मक्खी को छत्ता बनाने में ही अधिक समय लगता है यदि उस छत्ते को नष्ट न किया जावे होशियारी से छत्ते को एक तेज औजार से काट कर उसका शहद निकाल लिया जावे और छत्ते को फिर अपने स्थान पर रख दिया जावे तो मक्खियाँ कुछ ही दिनों में छत्ते को फिर भर देती हैं। इस धन्धे की विशेषता यह है कि न तो इसके लिए अधिक स्थान की आवश्यकता है न इसमें अधिक परिश्रम है और न

अधिक पूञ्जी की ही आवश्यकता है। साधारणतः एक मक्खियों का कुटुम्ब वर्ष में १०० पौंड शहद उत्पन्न करता है। शहद एक अत्यन्त पुष्टिकर भोज्य पदार्थ है। प्राचीन समय से शहद के गुणों को भारतवासी जानते हैं किन्तु अभी तक हम लोगों ने इस धन्धे की ओर ध्यान नहीं दिया। जब कि अन्य देशों में विशेषकर संयुक्तराज्य अमेरिका तथा जर्मनी का किसान इस धंधे से करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष प्राप्त करता है। दक्षिण में वाई० यम० सी० ए० के द्वारा संचालित ग्राम सुधार केन्द्रों में इस धंधे की शिक्षा दी जा रही है।

दूसरे प्रकार के धंधे वह हैं जिनसे वस्त्र प्राप्त होता है। किन्तु यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि वस्त्र बुनने का धंधा गौण धंधे के रूप में प्रचलित नहीं किया जा सकता किन्तु सूत कातने का धंधा तथा भेड़ पालने का धंधा किसान गौण रूप से कर सकता है।

सूत कातने का धंधा—

महात्मा गांधी के खादी आन्दोलन ने सूत कातने के धंधे को महत्व प्रदान कर दिया है किन्तु वैसे भी यह धंधा किसानों के लिए एक महत्व पूर्ण गौण धंधे के रूप में चलाया जा सकता है। जिन प्रदेशों में कपास उत्पन्न होती है वहाँ किसान अपने काम लायक बचा कर रख ले और घर की स्त्रियाँ बच्चे और पुरुष अवकाश के समय सूत कात कर गाँव के बुनकर से अपने लिए कपड़ा तैयार करवा ले। इस प्रकार कम से कम किसान अपने घर के लिए यथेष्ट कपड़ा तैयार कर सकता है और यदि वह आवश्यकता से अधिक सूत तैयार कर ले तो उसको बेच सकता है।

रेशम के कीड़े पालने का धंधा—

रेशम के कीड़े पालने का धंधा भी किसान के लिए एक महत्वपूर्ण गौण धंधा है। चीन जापान और फ्रांस का किसान इस धंधे के द्वारा खूब धन कमाता है। सर्व साधारण की यह धारणा है कि जिन प्रान्तों में जलवायु ठंडा है वहीं शहतूत के वृक्ष पैदा हो सकते हैं। किन्तु यह भ्रम है। हाँ इतनी बात अवश्य है कि ठंडे प्रदेशों में शहतूत के पत्तियों की दो फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं अतएव रेशम वर्ष में दो बार प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु शहतूत की पत्तियों की एक फसल तो देश के प्रत्येक भाग में प्राप्त की जा सकती है। अतएव यह धंधा (यदि वर्ष में एक बार रेशम प्राप्त करना हो) सब स्थानों में प्रचलित किया जा सकता है। किन्तु किसान केवल ककूनों को इकट्ठा करके बेंच सकता है रीलिंग करने में अधिक दक्षता की आवश्यकता है जो कि कुशल कारीगर ही कर सकते हैं। जहाँ जहाँ अंडी की पैदावार होती है वहाँ अंडी के कीड़े को पाला जा सकता है। किन्तु इस धंधे में एक कठिनाई है। रेशम की माँग गाँवों में नहीं है अतएव उसको बेचने के लिए सहकारी विक्रय समितियों की स्थापना करनी पड़ेगी।

भेड पालने का धंधा—

ऊन पैदा करने का धंधा सब जगह नहीं हो सकता। जहाँ जहाँ भेड़ रह सकती है वहाँ यह धंधा किसान कर सकता है। इस दृष्टि से यह धंधा अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। काश्मीर पंजाब तथा राजपूताने में किसान इस धंधे को कर सकता है।

इन धंधों के अतिरिक्त रस्सी बटना, डलिया बनाना, गुड़ तैयार करना चावल को कूटना इत्यादि धंधे भी किसान अवकाश के समय कर सकता है। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्राम उद्योग

संघ इन धंधों की उन्नति का प्रयत्न कर रहा है। यदि ग्राम उद्योग धंधों की उन्नति हो सकी तो किसान की आय में वृद्धि हो सकेगी और उसकी आर्थिक स्थिति सँभल सकेगी।

इनके अतिरिक्त गांव में कतिपय कुटीर उद्योग धन्धे भी अभी तक जीवित हैं, यद्यपि उनकी दशा अच्छी नहीं है। प्रत्येक गाँव में एक दो बुनकर, तेली चमार, कुम्हार, बढ़ई तथा लुहार अवश्य होता है किन्तु उसकी दशा बहुत अच्छी नहीं है। इन धन्धों की उन्नति के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं। बुनकर को नई डिजाइनें तैयार करने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको उनकी शिक्षा दी जावे। सस्ते और उत्तम करघों का आविष्कार किया जावे, जिससे बुनकर की उत्पादन शक्ति बढ़ सके। तेली के व्यवसाय की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसकी घानी को अच्छा बनाया जावे। आज गांव का चमार जिस प्रकार चमड़े को कमाता है वह अवैज्ञानिक है। उसके धंधे की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसको वैज्ञानिक तरीके बताए जावें। आज देश में चीनी के बर्तनों और बिजली के लिए इंस्यूलेटर्स की खपत होती है किन्तु कुम्हार ने इन चीजों को उत्पन्न करना नहीं सीखा। लगभग यही दशा गांव के लुहार और बढ़ई की है। आवश्यकता इस बात की है कि उत्तम औजारों तथा वैज्ञानिक रीतियों का प्रान्तीय औद्योगिक विभाग आविष्कार करे और उनका प्रचार किया जावे। साथ ही तैयार माल की खपत के लिए शहरों में विक्रय भंडार खोले जावें। जहां जहां पानी से बिजली उपन्न करने की सुविधा है वहां बिजली का उपयोग कुटीर उद्योग धंधों में अवश्य होना चाहिए। यदि इन धंधों का ठीक प्रकार से संगठन किया जावे उत्पादन कार्य में आवश्यक सुधार किए जावें, तैयार माल की बिक्री का उचित

प्रबन्ध हो तथा शक्ति (बिजली) सस्ते दामों पर प्राप्त हो सके तो यह धंधे मिलों की प्रति स्पर्धा में खड़े हो सकते हैं। ध्यान रहे कि यह कुटीर उद्योग धंधे स्वतन्त्र धन्धों के रूप में ही चलाए जा सकते हैं किसान उनको गौण धन्धे के रूप में नहीं अपना सकता।

सातवाँ परिच्छेद

ज़मीन का बन्दोबस्त

कृपि के परीच्छेद में हम देश के कृषि उद्योग की वर्तमान दशा, उनमें सुधार की आवश्यकता, और उसके उपायों के बारे में विस्तार से लिख चुके हैं। लेकिन इन सम्बन्ध में एक और प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है, और उनका कृषि उद्योग से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। यह है हमारे देश मे प्रचलित ज़मीन के बन्दोबस्त की विभिन्न प्रणालियो का सवाल। इनके बारे मे पूरी पूरी जानकारी हासिल करना कई दृष्टि कोणों से आवश्यक है। बन्दोबस्त की प्रणाली का खेती करने के तरीकों पर काफी असर पड़ता है। जमीन के सम्बन्ध मे किस किसके क्या क्या अधिकार हैं इसका भी हमको इससे पता चलता है। इसी को ध्यान मे रख कर जमीन की पैदावार का बंटवारा भी किया जाता है। इसके अलावा अलग अलग प्रणाली का अलग अलग राजनैतिक और सामाजिक महत्व भी है। भारतवर्ष जैसे देश मे जहाँ की तीन चौथाई जनता कृपि मे ही लगी हुई है, इसका देश के आर्थिक जीवन पर भी अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए इस परिच्छेद मे हम इसी सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

मोटे रूप से भारतवर्प में प्रचलित बन्दोबस्त की प्रणालियों को तीन भागो मे बाटा जा सकता है। (अ) ज़मीदारी बन्दोबस्त, जहाँ सारे इलाके का मालिक एक ही ज़मीदार होता है, (आ) ग्राम्य या महलवारी बन्दोबस्त, और (इ) रैयत वारी बन्दोबस्त। अब हम संक्षेप में इनमें से हर एक के बारे मे बिचार करेंगे।

(अ) जमींदारी बन्दोबस्त—

इसका विशेष लक्षण यह है कि ज़मीन का मालिक एक ज़मींदार होता है। वह स्वयं खेती नहीं करता और खेती के लिए ज़मीन किसानों को दे देता है जिनसे वह लगान वसूल करता है। अपनी ज़मीदारी की मालगुजारी सरकार को देने को जिम्मेदारी ज़मीदार पर होती है और किसानों तथा राज्य का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। यह प्रथा बंगाल, उत्तरी मद्रास, बनारस और अवध में प्रचलित है। अधिकांश बंगाल, उत्तरी मद्रास, और बनारस में सरकार और ज़मींदारों में स्थायी बन्दोबस्त है। अर्थात, लगान का जो कि ज़मीदार किसानों से वसूल करते हैं कितना भाग मालगुजारी के रूप में ज़मीदारों को सरकार को देना पड़ेगा यह हमेशा के लिए तय कर दिया है और लगान की रक़म में चाहे कितनी भी बढ़ती हो, सरकार मालगुजारी में कोई वृद्धि नहीं करेगी। इसके अलावा बंगाल के बाकी के ज़मींदारों और अवध के ताल्लुकेदारों के साथ अस्थायी बन्दोबस्त है।

(आ) ग्राम्य अथवा महलवारी बन्दोबस्त—

इस प्रकार के बन्दोबस्त का लक्षण यह है कि गाँव की ज़मीन का मालिक कोई एक ज़मींदार नहीं होता है जो कि ज़मीन की मालगुज़ारी देने के लिये सरकार के सामने ज़िम्मेदार हो, पर सारे गाँव वाले मिल कर ही मालगुजारी के लिए जिम्मेवार होते हैं। गांव वालों से मतलब गांव के प्रत्येक रहने वालों से नहीं है, बल्कि सिर्फ़ उन लोगों से है जो कि गांव की जमीन के एक न एक हिस्से के मालिक हैं। यहाँ ध्यान रखने की बात सिर्फ़ इतनी सी है कि प्रत्येक गांव में ऐसे लोग भी होते हैं जिनका गांव की ज़मीन में मालिक की हैसियत से कोई हिस्सा नहीं होता जो

जमीन के मालिकों से ज़मीन किराये पर लेकर खेती अवश्य करते हैं। बन्दोबस्त की यह प्रणाली संयुक्त-प्रान्त (उन गांवों को छोड़ कर जहाँ अवध के तालुकेदारों का अधिकार है), पंजाव, और मध्य प्रान्त में प्रचलित है। मध्य प्रान्त में इसका नाम मालगुज़ारी बन्दोबस्त है और संयुक्त प्रान्त और पंजाब में इसको महलवारी बन्दोबस्त कहते हैं। इन सब स्थानों में बन्दोबस्त बंगाल या उत्तरी मद्रास और बनारस की तरह स्थायी नहीं। वरन् अस्थायी है। संयुक्त प्रान्त में ३० वर्ष और पंजाब में ४० तथा मध्य प्रन्त में २० वर्ष के लिये मालगुज़ारी निश्चित कर दी जाती है।

(इ) रैयत वारी बन्दोबस्त—

इस प्रकार के बन्दोबस्त का लक्षण यह है कि यहाँ सरकार काश्तकारों से सीधा संबंध रखती है। प्रत्येक किसान अपनी अपनी जमीन की मालगुजारी देने के लिये स्वयं सरकार के सामने जिम्मेवार होता है, और उसके और सरकार के बीच में कोई तीसरा व्यक्ति नहीं होता। बन्दोबस्त की यह प्रणाली मद्रास (उत्तरी मद्रास को छोड़कर जहां जमीदारी प्रथा कायम है), बम्बई, बरार, मध्य भारत और आसाम में प्रचलित है।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तान में प्रत्येक जगह उपरोक्त तीनों प्रणालियों में से बन्दोबस्त की एक न एक प्रणाली अवश्य प्रचलित होना चाहिए, और बंदोबस्त या तो स्थायी होगा या अस्थायी। देश में स्थायी की अपेक्षा अस्थायी बन्दोबस्त ही अधिक पाया जाता है। अब हम भारतवर्ष में बन्दोबस्त के इतिहास पर तनिक दृष्टि डालेंगे।

इतिहास की दृष्टि से बन्दोबस्त के संबंध में एक ही महत्व पूर्ण प्रश्न है, और वह वह कि हमारे देश में ज़मींदारी प्रथा का

श्री गणेश कब हुआ ? अगर हम हिन्दू शासन के इतिहास का अध्ययन करें, तो यह बात स्पष्ट होते देर नहीं लगेगी कि उस समय जमीदार नाम का कोई व्यक्ति होता ही नहीं था। इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों के समय में पहले पहल हुआ। परन्तु उस समय भी जमीदार शब्द का वह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाता था जो आज हम लगाते हैं। उस समय जमीदार शब्द का अर्थ उन सरकारी कर्मचारियों से होता था जिनका काम राज्य के लिये मालगुजारी वसूल करना था। राज्य की ओर से उनके अपने इस कार्य के लिये वेतन मिलता था। जब मुग़ल साम्राज्य कमजोर पड़ गया, और केन्द्रीय सरकार का प्रभुत्व और संगठन पहले की अपेक्षा कम हो गया तो उसके दूर दूर के प्रांतों से माल-गुजारी वसूल करना तनिक कठिन कार्य हो गया। अतः इस कठिनाई से मुक्त होने के लिए और मालगुज़ारी की वसूली बरा-बर क़ायम रखने के लिए मालगुज़ारी वसूल करने वालों का वर्ग कायम हो गया जो किसानों से जितनी चाहते उतनी रकम वसूल करते और उसका ६।१० भाग तो सरकार को दे देते और बाकी का स्वयं रख लेते। अन्य प्रांतों की अपेक्षा बंगाल में इस वर्ग का प्रचार अधिक हो चुका था। जब मुग़ल साम्राज्य की स्थिति और भी कमज़ोर हो गई तो इस प्रथा का रूप और भी बुरा हो गया। मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार उन लोगों को दिया जाने लगा जिन्होंने सरकार को ज्यादा से ज्यादा रकम मालगु-जारी के रूप में जमा कराने का वायदा किया, और जिनको उस निश्चित रकम के जमा करा देने के बाद जो कुछ भी बच रहे उसे अपने लिए रख लेने का अधिकार प्राप्त हो गया। मुग़ल साम्राज्य की अवस्था जब अत्यन्त बिगड़ गई तो लगान वसूल करने वाले लोग अधिकाधिक लूट मचाने लगे, शासन की अवस्था से लाभ उठाकर इन्होंने अपना अधिकार पैत्रिक भी बना लिया। धीरे

धीरे इन लोगों ने अपनी स्थिति को मजबूत बना लिया और केन्द्रीय सरकार ने इनसे एक निश्चित् वार्षिक रकम मिल जाने के कारण इन लोगों को एक प्रकार से जमींदार बन जाने दिया। इस प्रकार की जमींदारी प्रथा का पहले पहले मुग़ल साम्राज्य में और ख़ास तौर से बंगाल में जन्म हुआ, पर धीरे धीरे यह प्रथा देश के अन्य भागों में भी फैल गई। जैसे जैसे प्रांतों की केन्द्रीय सरकारें कमजोर होती गई जमींदारों का बल बढ़ता गया।

जब ईस्ट इंडिया कंपनी को सन् १७६५ में बंगाल की दीवानी का अधिकार मिला तो स्थिति और भी अधिक बिगड़ गई। शुरू शुरू में कंपनी ने माल गुजारी वसूल करने का अधिकार हर साल उन लोगों को देना शुरू करा दिया जो ज्यादा से ज्यादा मालगुजारी वसूल करके जमा कराने का वचन देते थे। इन लोगों को किसानों को लूटने का पूरा पूरा मौक़ा मिल गया। अंत में सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल में स्थायी जमींदारी बन्दोबस्त क़ायम कर दिया। इस प्रकार किसानों से जमीन का पुश्तैनी हक़ छीन लिया गया और जमींदारों का एक शोषण वर्ग हमेशा के लिए भारत वर्ष में स्थापित कर दिया गया। बंगाल की जमींदारी प्रथा के अनुसार बनारस और उत्तरी मद्रास में भी स्थायी जमींदारी प्रथा क़ायम कर दी गई।

जमींदारी प्रथा को क़ायम करने में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एक ख़ास राजनैतिक उद्देश्य था, और उसको समझ लेना हमारे लिए आवश्यक है जैसा कि हम पिछले परिच्छेद में विस्तार पूर्वक लिख चुके हैं। ब्रिटिश साम्राज्य का एक मात्र उद्देश्य हमारे देश से लाभ कमाना रहा है। उसके इस लाभ के लिए कि देश में उसका राजनैतिक प्रभुत्व बना रहे, और राष्ट्रीय भावनाओं का वह सफलता के साथ मुक़ाबला कर सके

यह अत्यन्त आवश्यक था। इस लिए ब्रिटिश सरकार को यह बात जरूरी जान पड़ी कि हिन्दुस्तान के लोगों का ही एक ऐसा वर्ग उसके आधीन संगठित किया जावे जो आपत्ति और विद्रोह के समय उसका साथ दें। अतः जमींदारों का नया वर्ग स्थायी रूप से कायम करके उन्होंने एक ऐसे स्थायी स्वार्थ को जन्म दे दिया जो हमेशा देश की आजादी का अंग्रेजी झंडे के नीचे रहकर विरोध करना और यथा शक्ति उसके रास्ते में रोड़े अटकाना ही अपना एक मात्र कर्तव्य समझता है। आज इस तथ्य को हम अपने आंखों के सामने देख रहे हैं।

देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार की बन्दोबस्त की प्रणालियों के बारे में जानकारी हासिल कर लेने के बाद, इनसे होने वाली आर्थिक हानियों की चर्चा कर देना भी उचित होगा। सबसे पहले हम उन इलाकों का जिक्र करेंगे जहाँ जमींदारी प्रथा कायम है। यहाँ जमींदारी प्रथा में हम सारे सयुक्त प्रान्त को ही शामिल कर लेते हैं और पंजाब को रैयत वारी प्रथा में मान लेंगे क्योंकि व्यवहार में वहाँ के किसान भी सरकार को अलग-अलग मालगुजारी देते हैं और मद्रास और बम्बई के किसानों जैसी ही उनकी स्थिति है।

बङ्गाल में जमींदार प्रथा की स्थापना का सबसे पहला दुष्परिणाम तो यह हुआ कि असंख्य किसानों के जमीन सम्बन्धी पैतृक हक उनसे हमेशा के लिए छीन लिए गए और उनके ऊपर जमींदारों का एक नया वर्ग कायम कर दिया गया। धीरे धीरे इन किसानों की स्थिति बराबर बिगड़ती गई और उनकी हालत गुलामों से अच्छी नहीं रही। कानून में जमींदारों को इ बात की परी आजादी दे दी गई

कि वे मन चाहा लगान किसानों से वसूल करें। इसका परिणाम यह हुआ कि किसानों पर लगान का बोझ बराबर बढ़ता गया और लगान के अलावा उनसे और भी अनेकों प्रकार की लगानें वसूल की जाने लगीं। राज्य जमींदारों से मालगुजारी कड़ाई के साथ वसूल करता और इस वास्ते जमींदार किसानों के साथ लगान की वसूली में सख्ती करने लगे। लगान न चुका सकने पर एक साथ बहुत से किसानों को बेदखल कर देना मामूली बात हो गई। शुरू शुरू में किसानों की रक्षा करने के लिए कोई कानून नहीं बनाए गए, इनसे जमींदारों के अत्याचारों से उनको तनिक भी राहत मिलने का कोई साधन प्राप्त नहीं था। बाद में कुछ आसामी कानून पास किए गये हैं, लेकिन फिर भी जमींदार लोग चालाकी से उनकी अवहेलना करते आज भी दिखाई देते हैं और किसानों की दशा अच्छी नहीं है। बङ्गाल की जमींदारी प्रथा का सबसे बुरा लक्षण यह है कि वहाँ खेती करने वाले किसान और जमींदार के बीच में आसामियों और आसामियों के आसामियों का एक बड़ा सिलसिला कायम हो गया है। इनकी संख्या दस और कहीं कहीं शायद पच्चीस तक पहुँच जाती है। इनमें से हर एक किसान द्वारा पैदा की गई पैदावार में से हिस्सा बंटा लेते हैं, और ऐसी दशा में बेचारे किसान के पास कितनी सी पैदावार बच जाती है, यह समझना कठिन नहीं है। जमींदार प्रथा का एक और दुर्गुण जमीदारों को अपनी जमींदारियों से दूर रहने से सम्बन्ध रखता है। उनकी ग़ैर हाज़िरी में उनके गुमाश्ते लोग बेचारे किसान पर बड़ा ज़ुल्म करते हैं। ज़मीदारी प्रथा की जो बुराइयां बंगाल

में पाई जाती हैं वे ही उत्तरी मद्रास और संयुक्त प्रान्त में भी कुछ हद तक पाई जाती हैं। संयुक्त प्रान्त में आसामी क़ानूनों से (Tenancy Acts) किसानों को जो कुछ संरक्षण मिला है उसकी अवहेलना करते हुए जमीदार यहाँ भी देखे जाते हैं। लगान की वसूली के लिए ज़मीदार कठोर से कठोर उपाय काम में लाते हैं, और बकाया लगान की वसूली के सिलसिले में गरीब किसानों को मंहगी मुकदमें बाजी का सामना करना है। लगान के अलावा अन्य लागतों के संबंध में भी यहाँ काफी शिकायत है। जैसे ज़मींदार व्याह शादी के मौके पर किसानों से अनाज आदि चीजें मुफ्त में लेते हैं, सीर की ज़मीन मौसम में एक दिन मुफ्त में जोतेवाते हैं, मोटर और हाथी रखने के लिए उनसे कुछ न कुछ लिया जाता है। और इस प्रकार की दूसरी अनेकों नाजायज़ लागतें उनसे ली जाती हैं।

अब तक हमने जमींदारी प्रथा में किसानों की दशा के बारे में विचार किया, लेकिन और प्रान्तों में भी किसानों की हालत अधिक अच्छी हो, ऐसी बात नहीं है। जैसे जैसे खेती पर गुज़र करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़े होते जा रहे हैं और किसानों का कर्ज़ और दरिद्रता बराबर बढ़ती ही जा रही है। नतीजा यह हो रहा है कि ज़मीन किसानों के हाथों में से निकल कर महाजनों और साहूकारों के हाथों मे जा रही है, जहाँ कानून से महाजनों के पास जमीन नहीं जा सकती, वहाँ किसानों में दो वर्ग उत्पन्न हो गये हैं और मालदार किसानों के पास गरीब किसानों की जमीन जा रही है। जमींदारी प्रथा में ज़मीनदार किसानों पर जिस प्रकार का अत्याचार करते हैं, वही अत्याचार मालदार किसान गरीब किसानों पर करते हैं। पंजाब में इस बारे में स्थिति काफी शोचनीय है। वहाँ ६० फीसदी से भी ज्यादा ज़मीन पर

लगान देने वाले आसामियों द्वारा खेती की जाती है। पंजाब के इन जमींनदारों की चर्चा करते हुए मि० डार्लिंग एक जगह इस प्रकार लिखते हैं, "कहा जाता है कि सिर्फ ५ फीसदी जमींदार ही ऐसे हैं जो अपने आसामियों पर किसी न किसी तरह जुल्म नहीं करते। बाकी के जमींदार असामियों के खेतों में अपने घोड़े छोड़ देते हैं, अपने महमानों के शिकार के लिए उनके मुर्गे मुर्गी पकड़ लाते हैं, या जो भले आदमी गांव छोड़ कर चले जाते हैं, उन्हें मुकदमे लगा कर तंग किया जाता है कि बेचारे विवश हो कर लौट आते हैं"। चूंकि रैयतवारी इलाकों में आसामी कानून नहीं जानते हैं, बड़े जमींदारों को किसानों के मन माना व्यवहार करने की पूरी छूट रहती है। लगान में खूब वृद्धि की जाती है, और कहीं कहीं तो यह वृद्धि जमींदारी इलाकों मे भी अधिक देखने को मिलती है। सरकारी लगान जो किसानों से वसूल किया जाता है वह भी बहुत ज्यादा होता है, और हर नए बन्दोबस्त के मौके पर लगान में वृद्धि कर ही दी जाती है।

जमीन के बन्दोबस्त संबंधी समस्या का एक आवश्यक अंग उन किसानो की दशा से सम्बन्ध रखना है जिनको आसामी कानूनों के अनुसार भी कोई अधिकार नहीं मिले हैं और जिनको उनके जमींदार को यानी उस व्यक्ति को जिनकी जमीन पर वे काम करते हैं, बेदखल कर देना उसकी इच्छा पर है, जमींदारी व्यवस्था में जमींदार की 'सीर' पर जो लोग खेती करते हैं वे इस प्रकार के किसानों का उदाहरण हैं। इनको जमीन सम्बन्धी किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता। इनको शिकमी काश्तकार कहते हैं।

किसानों की दशा के संबन्ध में हमने ऊपर जो कुछ भी लिखा है उसके आधार पर हम नीचे लिखे नतीजों पर पहुँचते हैं।

(अ) जमींदारी प्रथा में किसानों पर जमींदार लोग काफ़ी अत्याचार करते हैं। उनसे अनेकों प्रकार की लागतें वसूल करते हैं और उनसे लगान भी ज्यादा वसूल किया जाता है। इसके अतिरिक्त आसामी क़ानूनों की अवहेलना भी करते दिखाई देते हैं।

(आ) रैयत वारी प्रथा में किसानों पर सरकारी लगान बहुत है और वह सख्ती से वसूल किया जाता है, और बड़े किसान छोटे छोटे किसानों के साथ ऐसा ही बरताव करते हैं जैसे जमीदारी इलाक़ों में जमींदार किसानों के साथ करते हैं। ज़मीन छोटे छोटे किसानों के पास से निकल कर इन बड़े किसानों और साहूकारों के पास जा रही है और अधिक ज़मीन पर लगान देने वाले आसामियों द्वारा खेती की जाती है।

खेती करने वालों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है जिनको ज़मीन संबंधी कोई अधिकार नहीं होते और जिनको ज़मीन का मालिक अपनी मरज़ी पर बेदखल कर सकता है।

इसके पहले कि हम इस गिरी हुई स्थिति को सुधार करने के लिए किन उपायों को काम में लावें इस संबंध में विचार करें, हमको स्थायी और अस्थायी बंदोबस्त के बारे में कुछ विचार कर लेना चाहिए। यह हम देख चुके हैं कि बंगाल, बनारस, और उत्तरी मद्रास में स्थायी बन्दोबस्त है और बाकी के सारे देश में अस्थायी बन्दोबस्त है। इन प्रान्तों में जहाँ कि स्थायी बन्दोबस्त क़ायम है, सरकार और ज़मींदारों में मालगुज़री संबंधी निर्णय हमेशा के लिए हो गया है, अर्थात ज़मीदार सरकार को कितना रुपया मालगुज़ारी के रूप में देंगे यह हमेशा के लिए निश्चित कर दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि किसानों से तो ज़मीदार लगान बराबर बढ़ाते गए हैं, लेकिन सरकार को चूँकि मालगुज़ारी की एक निश्चित रक़म ही

देनी पड़ती है, उस बढ़े हुए लगान का सारा फ़ायदा ज़मींदारों को ही मिलता है। यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि लगान की वृद्धि का फ़ायदा ज़मींदारों को उस हालत में भी मिलता है जब कि वे अपने कर्तव्यों को तनिक भी नहीं समझते और ज़मीन की उपज को बढ़ाने में और पैदावार के तरीक़ों में सुधार करने में किसान को किसी प्रकार की सहायता नहीं देते। एक समय था जब कि इस प्रकार के स्थायी बन्दोबस्त के पक्ष में बहुत से लोग थे, परन्तु अब तो शायद ही कोई होगा जो इसके पक्ष में हो। अतः इस बात का तो कोई प्रश्न है ही नहीं कि जहाँ अस्थायी बंदोबस्त है वहाँ स्थायी बंदोबस्त क़ायम किया जावे। सवाल तो विचार करने का यह है कि जहाँ अस्थायी बंदोबस्त पहले से ही मौजूद है क्या वहाँ पर उसको क़ायम रहने दिया जावे अथवा उसका अन्त कर दिया जावे? सरकार और किसानों दोनों ही की दृष्टि से लाभ की बात तो यही है कि स्थायी बन्दोबस्त का अन्त कर दिया जावे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इसका ज़मींदार वर्ग विरोध करेंगे, लेकिन उनके विरोध की चिन्ता किए बिना दृढ़ता से इस सुधार को सरकार को व्यवहार में लाना ही चाहिए।

अस्थायी बंदोबस्त के संबंध में प्रायः इस बात पर मतभेद देखने को मिलता है कि बन्दोबस्त कितने समय के लिए हो। कुछ लोग तो इस बारे में इस पक्ष में हैं कि बन्दोबस्त कम से कम समय, जैसे केवल दस वर्ष, के लिए किया जावे ताकि पैदावार में वृद्धि का लाभ जल्दी जल्दी सरकार को मिल जावे। दूसरा पक्ष बहुत लम्बे समय के बन्दोबस्त का हामी है। उनका कहना है कि बन्दोबस्त ६६ साल से कम होना ही नहीं चाहिए। इनकी दलील यह है कि बन्दोबस्त करने के समय अनेकों झंझटें सामने आती हैं और

किसान को यह भय रहता है कि उसका लगान बढ़ा दिया जावेगा इस लिए वह ज़मीन की उपज बढ़ाने मे अधिक दिलचस्पी नहीं लेता। अगर बन्दोबस्त जल्दी जल्दी नहीं होगा तो न तो बन्दोबस्त के समय होने वाली अड़चनों का हमको बार बार सामना करना पड़ेगा और किसानों को भी अपनी मेहनत का लाभ उठाने का समय मिल जावेगा। दोनों ही पक्षों की दलीलों में तथ्य है, और इस वास्ते बंदोबस्त न तो बहुत जल्दी ही किया जावे और न बहुत देर से ही इसके अलावा बंदोबस्त करने का कार्य पहले की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक हो गया है, इस वास्ते अब अधिक झंझटों वाली दलील में बहुत बल नहीं है। साधारणतया ३० वर्ष के बाद बंदोबस्त करना ठीक होगा। इस समय संयुक्त प्रांत में बंदोबस्त ३० वर्ष के बाद ही होता है।

यहाँ एक प्रश्न पर और विचार कर लेना ज़रूरी है। सरकार को मालगुजारी किस प्रकार निश्चित करनी चाहिए। इस संबंध में हमारे देश में अभी तक किसी एक सिद्धान्त को अपनाया नहीं गया है। अलग अलग प्रांतों मे लगान और मालगुज़ारी निश्चित करने के अलग अलग तरीके काम में लाए जाते हैं। मिसाल के तौर पर संयुक्त प्रांत मे मौरूसी काश्तकारों का लगान उस लगान के आधार पर निश्चित किया जाता है जो गैर-मौरूसी काश्तकार ज़मीदारों को पिछले बंदोबस्त में दे चुके हैं। मध्य प्रांत में लगान का निश्चय भूमि के गुण और स्थिति की जाँच करके किया जाता है और बंबई प्रांत में बंदोबस्त अफ़-सर यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि प्रत्येक खेत में पिछले बन्दोबस्त के समय जो उपज हुई उसकी क़ीमत क्या थी और उसमें लागत खर्च क्या हुआ था। उपज की रक़म से लागत खर्च निकाल देने पर जो रक़म शेष रहती है, साधारणतया उसका

लगभग आधा भाग आगामी बंदोबस्त तक के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। युक्त प्रांत में भी लगान का लगभग आधा मालगुजारी के रूप में सरकार ले लेती है।

इस बात से कोई भी असहमत नहीं होगा कि मालगुजारी निर्धारित करने की विधि देश भर के लिए एक ही होना चाहिए। बंबई प्रांत में जिस प्रकार माल गुज़ारी वसूल की जाती है सिद्धान्त रूप से वही प्रणाली देश भर के लिए अपनाना उचित होगा। लेकिन उसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता है। उपज का मूल ठीक ठीक लगाना चाहिए और लागत में किसान और उसके घर के लोगों की मजदूरी भी शामिल कर लेना आवश्यक है। अभी ऐसा नहीं किया जाता। इस बात को सन् १९२६ की कर जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है। वे खेत जिनकी आमदनी के रूप में लागत खर्च लगाने के बाद कुछ न बचे उनमें किसी प्रकार का लगान वसूल नहीं करना चाहिए। इसके अलावा माल गुज़ारी का सब किसानों से (रैयत वारी प्रांतों में) और जमींदारों से (जमींदारी प्रथावाले प्रांतों में) लगान का ५० प्रतिशत के हिसाब से वसूल करना भी अनुचित है। क्यों कि बड़े बड़े किसानों और जमींदारों को ५० प्रतिशत देना मुश्किल नही होगा, लेकिन छोटे किसानों और जमींदारों के लिए तो वह बहुत भार रूप सिद्ध होगा। जैसे जैसे लगान की आमदनी अधिक हो मालगुज़ारी की दर बढ़ना चाहिए।

बन्दोबस्त स्थायी होना चाहिए अथवा अस्थाई और मालगुज़ारी निर्धारित करने का क्या सिद्धान्त होना चाहिए और लगान और मालगुज़ारी का क्या अनुपात होना चाहिए इस बारे में हम ऊपर लिख चुके हैं। लेकिन इसके अलावा और

भी कुछ ऐसी बातें हैं जिनका हम पहले जिक्र कर चुके हैं और जिनमें सुधार की आवश्यकता है। अतः अब हम उन सुधारों का यहाँ पर संक्षेप में वर्णन करेंगे।

सबसे पहले तो इस बात की ज़रूरत है कि ज़मींदारी इलाकों में ज़मीदार लोग किसानों पर जो अत्याचार करते हैं वे कानून द्वारा बन्द कर दिये जाने चाहिए और उन कानूनों का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिए। लगान के अलावा ज़मीदारों को अन्य किसी प्रकार की भी लागत वसूल करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए जैसा कि आज ज़मीदार लोग करते हैं।

मौजूदा आसामी कानूनों का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिए उनमें सुधार की जहाँ जरूरत समझी जावे सुधार होना चाहिए।

प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो खेती से अपना जीवन निर्वाह करता है चाहे फिर वह किसी ज़मींदार के खेत पर खेती करता हो अथवा रैयतवारी इलाके के किसी किसी किसान का आसामी हो जिस ज़मीन पर वह लगातार तीन वर्ष तक खेती करले उस पर उसे मौरूसी हक़ मिलना चाहिए। इस प्रकार आज जितने भी गैर-मौरूसी और शिकमी काश्तकार हैं उन सबको मौरूसी हक़ मिल जाना चाहिए।

ज़मींदारों को बेदख़ली का अधिकार नहीं होना चाहिए और क़ानून द्वारा ज़मींदारों से इस अधिकार को ले लेना चाहिए। ज़मींदार लोग अपने इस अधिकार का प्रायः पूरा पूरा दुरुपयोग करते हैं।

क़ानून द्वारा लगान में (जो किसान ज़मींदारों को देते हैं) और मालगुज़ारी में (जो रैयतवारी प्रान्तों में किसान सरकार

को देते हैं) काफ़ी कमी होनी चाहिए । ज़मींदार प्रान्तों में लगान के कम होने पर मालगुजारी में कमी उसी दशा में की जावे जबकि उतनी मालगुजारी देना जमींदार के लिए भार रूप समझी जावे। वे किसान जिनको खेती से बिलकुल (अपनी मज़दूरी आदि सब लागत निकाल कर) आमदनी नहीं होती। या जिनको बहुत कम आमदनी होती है उनसे किसी प्रकार का लगान वसूल नहीं किया जावे। उदाहरण के लिए ढाई सौ की आमदनी तक कोई मालगुजारी नहीं ली जावे और बाद में जैसे जैसे लगान बढ़े मालगुजारी का अनुपात भी बढ़ा दिया जावे।

ऊपर बताए गए सुधार ऐसे हैं जिनको जल्दी से जल्दी व्यवहार में लाना अत्यन्त आवश्यक है, अगर हम चाहते हैं कि किसानों की गिरती हुई दशा को किसी प्रकार किसी हद तक रोका जावे । जिन प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें क़ायम हुईं उनमें से कुछ में इस प्रकार के सुधार किए गए हैं । राष्ट्रीय सरकारों का कर्तव्य होगा कि इस सबसे महत्वपूर्ण समस्या की ओर आवश्यक ध्यान दें । संयुक्त प्रान्त में जो नया आराज़ी क़ानून बना है उसके अनुसार लगान में कमी हो जावेगी और जिन काश्तकारों को अभी तक मौरूसी हक़ हासिल नहीं है उनमें से अधिकांश को यह हक़ मिल गया है। फिर भी जमींदारों को संतुष्ट करने के प्रयत्न में सरकार ने बहुत सी ऐसी बातें स्वीकार कर ली हैं जो किसानों की हित की दृष्टि से हानि कारक हैं।

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहले एक प्रश्न पर हमको और विचार कर लेना चाहिए जो धीरे धीरे हमारे देश में अत्यन्त महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। प्रश्न यह है कि जमींदारी प्रथा

कायम रहने देना चाहिए या इसका अन्त कर देना चाहिये ? जैसे जैसे देश मे स्वाधीनता का लक्ष्य देश की असंख्य जनता को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करना है, यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है, और साथ साथ जमींदारों की अनुदार और प्रतिक्रिया वादी नीति का देश को अधिकाधिक परिचय मिलता जाता है, देश के अधिकांश लोगों की यही राय बनती जा रही है कि जमीदारी प्रथा का बिलकुल अन्त ही हो जाना चाहिए। कुछ लोग इस संबध में यह आपत्ति उठाते हैं कि ऐसा करना न्यायोचित नहीं होगा। लेकिन वे लोग इस बात को भूल जाते हैं कि न्याय और अन्याय का निर्णय स्थिति और काल के अनुसार ही किया जाना चाहिए, और जिस चीज़ से देश की असंख्य पीड़ित जनता को राहत मिले वही न्याय की सब से बड़ी कसौटी है। फिर जब हम देख चुके हैं कि भारतवष में जमीदारी प्रथा के जन्म का कारण एक विदेशी साम्राज्य वाद की देश से लाभ उठाने की एक मात्र इच्छा थी और जिन लोगो को जमीदारों के अधिकार दिए गए उनके पीछे कोई आधार नही था, तो न्याय और अन्याय का प्रश्न तो और भी हमारे लिए सरल हो जाता है। एक बार जो अन्याय और ग़लती हो चुकी है, उसको हमेशा उसी रूप में जारी रखना ही वास्तविक अन्याय है, उसका अन्त करना अन्याय नहीं हो सकता।

जमीदारी प्रथा के सम्बंध मे दूसरा पहलू हमारे सामने आर्थिक है। इस संबंध में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। जमीदार लोग आज आनन्द और सुख से जीवन व्यतीत करते दिखाई देते हैं और अपने भोग और विलास के साधनों पर खूब पैसा बरबाद करते हैं, जबकि इस पैसे को कमाने के लिये उनको किसी प्रकार का श्रम नहीं करना पड़ता। ग़रीब किसान एड़ी से चोटी तक का पसीना बहाकर जो कुछ पैदा करते हैं वह इन ज़मीदारों

के खजानों में पहुँच जाता है। और वे इतने से ही संतुष्ट नहीं होते। किसानों का वह इतना अधिक शोषण करते है कि उनकी पैदा करने की शक्ति बराबर घटती जाती है। एक ओर से इस प्रकार का धन का दुरुपयोग होता है, और उधर हमारी सरकार के पास राष्ट्रोन्नति के बहुत से कामों के लिए पैसा नहीं रहता। और किसान तो लगान के बोझ से बराबर पिसा ही जाता है। ऐसी दशा मे जमीदारी प्रथा का अन्त करने से यह लाभ होगा कि जो लगान अभी जमीदारों के पास जाता है वह बिलकुल बच रहेगा, और उसका कुछ भाग किसानों को और कुछ सरकार को बाँटा जा सकेगा। नतीजा यह होगा कि किसानों के मौजूदा लगान में भी कमी न हो सकेगी और जो मालगुजारी वे सरकार को उस हालत में देंगे वह आज ज़मीदारों से उनको जितनी मालगुज़ारी मिलती है उससे ज्यादा होगी। इस प्रकार सरकार की आय में भी वृद्धि हो सकेगी। अतः इसमे तो तनिक भी संदेह नहीं कि जमींदारी प्रथा हमारे देश की आर्थिक उन्नति में बाधक है, और सामाजिक व्यवस्था का एक प्रतिक्रिया वादी अंग है जिसका राष्ट्र के लिए कोई उपयोग नहीं है। इस वास्ते इसका अन्त कर देना उचित ही है।

अब सवाल यह है कि इसका अन्त किस प्रकार किया जावेगा। यह बहुत कुछ ज़मींदारों के रुख पर निर्भर रहेगा। अगर ज़मींदार लोग समय की गति को पहिचान के शांतिपूर्वक इस प्रथा के नष्ट करने में किसी प्रकार की अड़चन उत्पन्न नहीं करते हैं तो शायद इस बात का प्रबन्ध किया जा सकेगा कि उनको उचित मावज़ा मिले। मावज़ा किस प्रकार से और कितना मिलेगा इसका निश्चय उस समय की परिस्थिति का ध्यान करके ही किया जा सकेगा ताकि किसानों पर बोझ न पड़े। किन्तु

अगर जमीदार वर्ग ने दूरंदेशी से काम नहीं लिया, जिसकी उनके मौजूदा ढंग को देख कर बहुत आशा नहीं होती, तो भी यह तो निश्चित है ही कि इस प्रथा का अन्त अवश्य होगा। किन्तु एक बड़े संघर्ष के बाद और उस संघर्ष का नतीजा ज़मीदार वर्ग के लिए क्या होगा इसका कोई अनुमान पहले से लगाना असंभव है।

अब हम ज़मीन के बन्दोबस्त संबंधी प्रत्येक पहलू पर विचार कर चुके हैं, और हमारे उक्त वर्णन का यह नतीजा निकलता है कि इस संबंध मे जो वर्तमान दशा है वह अनेको दृष्टि से हानिकारक है और उसमें छोटे बड़े अनेकों सुधारों की आवश्यकता है। अगर हम ज़मीदारी प्रथा के अन्त करने के क्रान्तिकारी प्रश्न को फिल हाल छोड़ भी दें, तो भी और बहुत से ऐसे परिवर्तन हैं जो कि अत्यन्त आवश्यक हैं और जिनको जल्दी से जल्दी व्यवहार में लाना ज़रूरी है।

आठवां परिच्छेद

गाँवों में स्वास्थ्य और सफाई

साधारणत: हम लोगों की यह धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों मे मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुव अच्छा रहता है। गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होती हैं क्योंकि वहाँ मनुष्यों को खुली हवा और सूर्य का प्रकाश खूब मिलता है। किन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। वर्षा के उपरान्त तनिक गाँवों में जाने का कष्ट उठाइये तो आपको जो दृष्य देखने को मिलेगा वह अत्यन्त दुखदायी होगा। उन दिनों वहाँ सर्वत्र जूड़ी और बुखार फैला दिखलाई देगा। किसी भी गाँव वाले से आप पूछ लीजिये वह इस मौसम में अवश्य ही कुछ दिनों के लिए रोग ग्रस्त होता है। बंगाल और आसाम में तो यह दिन मानों प्रलय के होते हैं। धान की फसल खड़ी रहती है किन्तु काटने वाले नहीं जुड़ते। मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के गाँव ही उसके कारण शैय्या पकड़ लेते हैं। प्लेग, हैजा, हुकवार्म, चेचक, काला आज़ार, क्षय तथा अन्य प्रकार के रोगों का भी गाँवों में कुछ कम प्रकोप नहीं होता। हम शिक्षित वर्ग के लोग गाँवों के बारे में कुछ जानते ही नहीं। हम केवल कल्पना के द्वारा गाँवों के विषय में अपनी धारणा बना लेते हैं। यही कारण है कि गाँवों के विषय में हम नितान्त अनभिज्ञ हैं।

इस सम्बन्ध में आल इंडिया मेडिकल कान्फ्रेंस का वह प्रस्ताव जो उक्त सम्मेलन ने १६२४ और १६२६ में पास किया था, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हमारे ग्रामों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या पर पूरा प्रकाश डालता है। प्रस्ताव निम्नलिखित है।

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि उन रोगों से जो दूर किए जा सकते हैं-प्रति वर्ष देश में पचास या साठ लाख मृत्युएं होती हैं। ऐसे रोके जा सकने वाले रोगो से भारतवर्ष मे प्रत्येक मनुष्य वर्ष में दो या तीन सप्ताह के लिए काम करने के अयोग्य हो जाता है। यही नहीं उसकी कार्य क्षमता भी बीस प्रतिशत घट जाती है। भारतवर्ष मे उत्पन्न हुए बच्चों में से केवल पचास प्रतिशत ही कमाने योग्य हो पाते हैं जब कि थोड़ा सा प्रयत्न करने से उनकी संख्या ८०-९० प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। इस सम्मेलन का विश्वास है कि यह आंकड़े किसी प्रकार भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है, फिर भी भूल हो जाने की सम्भावना का ध्यान रखते हुए हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इन रोके जा सकने वाले रोगों द्वारा होने वाली जीवन तथा कार्य क्षमता की हानि के कारण भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कई अरब रुपए की हानि उठानी पड़ती है। इस भयंकर आर्थिक हानि के अतिरिक्त प्रतिवर्ष लाखों स्त्री-पुरुषों को घोर कष्ट उठाना पड़ता है।

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि इस भयङ्कर जनशक्ति की हानि अपेक्षाकृत थोड़े से व्यय से रोकी जा सकती है। सम्मेलन की राय में यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है, जिसका सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि भारत की निर्धनता का सब से महत्वपूर्ण कारण रोके जा सकने वाले रोगों द्वारा होने वाले कर्याक्षमता की हानि ही है, अतएव धनकी कमी इस आवश्यक सुधार में बाधक न होनी चाहिए।"

ध्यान रहे ऊपर दिया हुआ प्रस्ताव भारत के प्रमुख डाक्टरों के सम्मेलन ने पास किया है। इससे हमारे गाँवों के स्वास्थ्य और सफाई की समस्या पर प्रकाश पड़ता है।

किसी किसी प्रान्त में कुछ भयङ्कर रोगों ने स्थायी अड्डा जमा लिया है जो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या मे ग्रामीणों को मृत्यु के कराल गाल मे पहुँचा देते हैं। असहाय ग्रामीण इसको दैवी कोप समझ कर चुपचाप सहन करते रहते हैं। वे समझते हैं कि इनका कोई उपचार ही नहीं है। क्रमशः वे पूर्ण भाग्यवादी बन गए हैं। यह सब कुछ होते हुए भी गाँवों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है।

अब तनिक ग्रामों की सफाई के विषय में सुनिए। गाँवों में जाकर देखिए तो सर्वत्र गंदगी पाइयेगा। यदि आप किसी रास्ते पर जा रहे हों. हवा दुर्गन्ध आने लगे, मक्खियाँ उड़ती हुई दिखलाई दें, तो समझ लेना चाहिये कि गाँव समीप आ गया है। और आगे बढ़िये। कूड़ा अथवा गंदगी के ढेर दिखलाई दें अथवा ताल या पोखरे मिलें जिसका जल सड़ा हुआ और दूषित हो गया हो, जिसके चारों ओर मल पड़ा हो, तो समझ लेना चाहिये कि हम गांव की सीमा पर हैं। बस्ती के अन्दर ठीक ठीक रास्ते नहीं होते, सारे गांव में धूल और मक्खियों का बाहुल्य होता है। वर्षा के दिनों में तो गांव का रास्ता दलदल बन जाता है और जाड़े तथा गरमी में इतनी धूल होती है कि गाड़ियों के निकलते और पशुओं के एक साथ चलते समय सारा गांव धूल से ढक जाता है। घरों में नालियाँ न होने के कारण घरों का गंदा पानी वायु को दूषित करता रहता है।

भारतीय ग्रामों के अधिकांश घरों में शौच गृह नहीं होते। गांव के स्त्री पुरुष खेतों, खुले मैदान और तालाब के किनारे शौच को जाते हैं इसका यह फल होता है कि तालाब का पानी जो गुप्त अंग को साफ करने के काम में लाया जाता है अत्यन्त दूषित

हो जाता है। उसी जल को गांव के ढोर पीते है जिसके फल स्वरूप पशुओं के पेट और मुँह की बीमारियां फैलती है। खेतों और मैदानों की शौच जाने की प्रथा से एक प्रकार का भयंकर रोग फैलता है। अधिकांश ग्रामीण जूता नही पहिनते और जो जूता पहिनते भी हैं वे गाँव में चलते फिरते समय और खेतो में काम करते समय जूता कभी नही पहिनते। नंगे पैर चलने से मल पैरों के सम्पर्क में आता है। मल में एक प्रकार का कीटाणु उत्पन्न हो जाता है जिसे हुकवार्म कहते है। कीटाणु पैरों के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाता है जिससे मनुष्य हुकवार्म रोग से पीड़ित होता है। भारतवर्ष में इस रोग की प्रचडता इसी कारण है। मल के सूख जाने पर वह मिट्टी के कणों के साथ मिल कर हवा मे उड़ता है। कुओ और तालाबों के जल में, स्त्री पुरुष, बच्चों और पशुओं की आँखों में, तथा भोजन सामग्री मे पड़ कर उन्हें दूषित करता है।

ग्रामों में जगह जगह किसान गोबर और कूड़े के ढेर लगा कर खाद तैयार करते हैं। बरसात तथा अन्य मौसमों में इनके कारण बड़ी गंदगी फैलती है। मक्खियों के तो यह उद्गम स्थान है। मक्खियाँ और दूसरे कीड़े इस गदगी को अपने पैरो के द्वारा ले जाकर पशुओं और बच्चों की आँखों तथा भोजन सामग्री पर बैठ कर उसे वही छोड़ देती हैं, इन्ही कारणों से गॉव के बच्चों तथा स्त्री पुरुषों की ऑखें अधिकतर खराब दिखलाई देती हैं। गाँव के लोग अपना मकान बनाने के लिए तथा वर्षा के उपरान्त प्रति वर्ष मकानों की मरम्मत करने के लिए गॉव के समीप से ही मिट्टी खोद लेते हैं। इसका फल यह होता है कि गॉव के चारों ओर तालाब तलैया अथवा बड़े बड़े गड्हे बन जाते है। वर्षा का जल इनमें भर जाता है। यही नही बिखरे खेतों की समस्या ने भी हमारे गाँवों में उग्र रूप धारण कर लिया है। इसके

कारण बहुत सी आवश्यक मेढ़ें पानी के प्राकृतिक बहाव में बाधक होती हैं। रेलों, नहरों और सड़कों के बनाने में ऐसी भयंकर भूल हो गई है कि उनके कारण भी भिन्न भिन्न प्रान्तों में पानी का प्राकृतिक बहाव रुक गया है। इसका यह फल होता है कि वर्षा के उपरान्त गाँवों में भयंकर मलेरिया ज्वर फैलता है। मलेरिया का कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है। अतएव जब तक गाँव के आस पास के तालाब भर न दिये जायँ अथवा रुके हुए पानी की समस्या को हल न किया जावे तब तक मलेरिया से पिंड नहीं छूट सकता। ऊपर लिखे हुए कारणों तथा चिकित्सा के साधनों के अभाव में बहुत से भयंकर रोग स्थायी रूप से गाँवों में जम गए हैं।

अब प्रश्न यह है कि गाँव की समस्या तथा सफाई की समस्या कैसे हल हो। इसके अतिरिक्त गाँवों में बच्चे उत्पन्न कराने का काम भी अधिकतर नीच जाति की अशिक्षित और गंदी दाइयाँ करती हैं इससे भी माता तथा बच्चे के स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। इस सम्बन्ध में जो अवैज्ञानिक तथा अस्वास्थ्यकर रस्में देश में प्रचलित हो गई हैं उनसे जो भयंकर क्षति होती है वह अकथनीय है। बहुत सी माताएँ तथा बच्चे प्रसव के समय मर जाते हैं, और बहुत सी माताओं और बच्चों का स्वास्थ्य सदैव के लिए खराब हो जाता है।

प्रान्तीय सरकारें अब इस ओर ध्यान दे रही हैं। किन्तु नवीन शासन विधान का भयंकर आर्थिक बोझ प्रान्तों की रीढ़ तोड़ देगा - अतएव पैसे की कमी के कारण यह सम्भव नहीं है कि प्रान्तीय सरकारें हमारे गाँव वालों को अकाल मृत्यु से बचा सकें। अस्तु हमें ऐसी योजना बनानी चाहिए कि जिससे

सरकार पर बिना अधिक निर्भर रहे ग्रामवासी अपनी दशा को सुधार सकें।

इस दिशा में बंगाल में एक सफल प्रयोग हुआ है। बंगाल मे मलेरिया-ज्वर का भीषण प्रकोप होता है, वहाँ प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में लोग इससे मरते हैं और कही कहीं तो मलेरिया के कारण गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं। अभी तक विशेषज्ञों का मत था कि मलेरिया का कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने के स्थान से आठ मील तक जा सकता है। सरकार का विश्वास था कि ऐसी दशा में मलेरिया को रोकने का केवल एक ही उपाय हो सकता है कि आठ मील के घेरे में जितने भी गढ़हे हों भर दिए जावें और पानी कहीं भी रुकने न दिया जावे। इस कार्य में इतना अधिक व्यय होने की सम्भावना थी कि बंगाल सरकार ने इसको अपनी शक्ति के बाहर समझा। जनता का भी यह विश्वास था कि यह रोग तभी रोका जा सकता है कि जब कोई बड़ी योजना तैयार की जाय। इसी कारण बंगाल के ग्रामीण इस ओर से हताश हो चुके थे।

किन्तु डाक्टर गोपालचन्द्र चटर्जी ने अनुसंधान करके यह पता लगाया कि मलेरिया के कीटाणु अपने जन्मस्थान के आध मील से दूर नहीं जा सकता है और सरकारी विशेषज्ञों का मत भ्रमपूर्ण है। यह खोज कर चुकने के उपरान्त उन्होंने प्रान्त में इस रोग से युद्ध करने के अभिप्राय से ऐन्टी-मलेरिया सहकारी समितियों की स्थापना की। प्रान्तभर में इस आन्दोलन का संचालन करने के लिए उन्होंने एक सैन्ट्रल कोआपरेटिव सोसायटी लिमिटेड की भी स्थापना की। क्रमशः ग्राम समितियों की संख्या बढ़ती गई और आज बंगाल में ७०० से ऊपर ऐन्टी मलेरिया समितियाँ सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं।

ग्राम समितियाँ अपने अपने गांवों में मलेरिया अथवा अन्य रोगों को रोकने का उपाय करती हैं। समितियों के सदस्यों को चार आने से लेकर एक रुपया तक मासिक चंदा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक वेतन देकर नौकर रखती है जो समिति के सदस्यों के घर पर बिना फीस लिए जाता है और रोगियों की चिकित्सा करता है। प्रान्तीय सरकार इन समितियों को कुछ सहायता भी देती है। इन समितियों ने बहुत से स्कूल तथा अस्पताल खोल रक्खे है। कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जो सर्व साधारण को दवा देते हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल समिति के सदस्यों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कतिपय समितियाँ स्थापित हो जाती हैं तो उनकी देखभाल करने के लिए ग्रूप-समिति स्थापित करदी जाती है। कहीं ग्रूप समितियाँ ही चिकित्सक रखती हैं जो उस क्षेत्र की समितियों के सदस्यों की चिकित्सा करता है। और जब मलेरिया चेचक, हैज़ा, काला आज़ार अथवा प्लेग का प्रकोप बढ़ता है तो वह उसको रोकने का उपाय करता है।

ग्राम समितियाँ वर्षा के पूर्व गांव के समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों, तथा पोखरों को भरवा देती हैं। नाले तथा नालियाँ ठीक कर दी जाती हैं जिससे कि कहीं पानी रुक न जाय। खेतों के बहाव भी ठीक कर दिए जाते हैं। फिर भी यदि वर्षा में कहीं पानी भर जाता है तो वहाँ समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है जिससे मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति प्रत्येक सदस्य को छपी हुई पुस्तक देती है जिसमें वह प्रति सप्ताह यह लिखता है कि उसके घर के लोग कितने दिनों के लिए बीमार पड़े। इनके द्वारा गांव में मलेरिया घट रहा है या बढ़ रहा है यह मालम हो जाता है।

लेखकों की योजना

भारतवर्ष मे रोके जा सकने वाले रोगों के कारण मनुष्य जीवन तथा कार्य शक्ति का जो भयंकर ह्रास हो रहा है वह सहकारी-स्वास्थ्य-समितियाँ स्थापित करके रोका जा सकता है। होना यह चाहिए कि प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ रक्षक समिति की स्थापना की जाय। जहाँ तक हो सके हर एक गाँव वाले को उसके लाभ समझाकर उसका सदस्य बना लिया जाय। हर एक घर पीछे चार आना चंदा लिया जाय। जो लोग बहुत निर्धन हों उनसे चंदा न लिया जाय, चंदे के बदले वे लोग घर पीछे एक आदमी महीने में एक दिन समिति का कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चंदा अनाज के रूप में भी दे सकता है। किन्तु चंदा देने वाले तथा काम करने वाले सदस्यों में कोई अन्तर नहीं रखना चाहिए। दोनों प्रकार के सदस्यों के अधिकार और कर्तव्य एक ही हों।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार होगा। प्रयत्न यह किया जाय कि प्रत्येक सदस्य समिति के कार्य में भाग ले। साधारण सभा प्रति वर्ष बजट पास करे तथा समिति का वार्षिक प्रोग्राम निश्चित करे। साधारण सभा अपने वार्षिक अधिवेशन में पाँच सदस्यों की एक पंचायत, उसका सरपंच, दो मंत्री और एक कोषाध्यक्ष का भी निर्वाचन करे। दोनों मंत्री समिति के कार्य को आपस में बाँट लें। जो सदस्य चंदा न दें उनसे मंत्री समिति का निम्नलिखित काम करवाये। गाँव के सब समीपवर्ती गड्ढों को पाटना, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक करना। वर्षा समाप्त होने पर जहाँ पानी रुक जाय वहाँ मिट्टी का तेल छुड़वाना,

औषधालय में काम करवाना, और उन सदस्यों को समिति के काम से अन्य स्थानों पर भेजना इत्यादि।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ औषधियों का संग्रह करे जो साधारण रोगों में काम आ सकें। बहुत सी औषधियाँ ग्राम के पास ही मिल जाँयगी। चिकित्सक की सलाह से वे सब औषधियाँ इकट्ठी कर ली जाँय। चिकित्सक को जहाँ तक हो सके गाँव में उत्पन्न होने वाली औषधियों का ही उपयोग करना चाहिए। चिकित्सक को चाहिए कि वह मंत्री को उन औषधियों की जानकारी भी करा दे। औषधियों के बाँटने का काम दूसरे मंत्री के हाथ में रहे। समिति आवश्यकतानुसार गाँव से कुछ दूरी पर थोड़े से गड्हे खुदवावे। यह गड्हे सात फीट गहरे हों, उनके चारों ओर अरहर की आड़ खड़ी कर दी जाय और गड्हों के मुँह पर लकड़ी के दो तख्ते रख दिए जायं। यही गाँव के शौचगृह हों। इनसे दो लाभ होंगे एक तो गाँव में सफाई रह सकेगी दूसरे अभद्रता भी न हो सकेगी। गाँव वालों को मैदान में शौचगृह जाने की हानियाँ बता कर वे लोग इन पिट-लैट्रिन में शौच जाने के लिए प्रोत्साहित किए जावें। जहाँ सम्भव हों वहाँ बोर-लैट्रिन्स बनाये जांयं। कुछ शौचगृह स्त्रियों के लिए पृथक कर दिए जावें। यदि कुछ लोग इन शौचगृहों में न जाना चाहें तो इस बात का प्रचार किया जाय कि मैदान में शौच जाते समय एक खुरपी अवश्य ले जाई जाय। जहाँ बैठना हो वहाँ एक फीट गहरा छोटा सा गड्ढा खोदा जाय और उसमें मल को मिट्टी से दाब दिया जाय। इससे यह लाभ होगा कि गाँव गंदगी से बच जायेगा।

समिति एक मेहतर नौकर रक्खे जो गाँव का कूड़ा (गाँव की गलियों का कूड़ा) गड्हो में लाकर डाल दिया करे, साथ ही

उन शौचगृहों की देखभाल करे। इस प्रकार गाँव साफ रह सकेगा। सदस्य अपने घरों को स्वयं साफ करते ही हैं अपने घर के बाहर की भूमि को भी साफ रक्खे। उन्हें गड़हों में खाद बनाने के लाभ समझाये जाँय और उन्हें गड़हों में खाद बनाने के लिए उत्साहित किया जाय। प्रत्येक किसान दो गड़हे तैयार करे, एक में से जब खाद निकाली जाय तब दूसरे में गोबर तथा कूड़ा भरा जाय। किसान प्रति दिन गोबर, भूसा चारा जो पशुओं के पास बचा रहता है गड्ढों में डाल दिया करे। इससे दो लाभ होंगे एक तो गंदगी दूर होगी, दूसरे उत्तम खाद तैयार होगी। समिति शौचगृहों में तैयार की हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती चार पाँच गाँवों की समितियाँ मिल कर सामूहिक समिति बनालें। प्रत्येक ग्राम समिति के प्रतिनिधि सामूहिक समिति के सदस्य होंगे। प्रत्येक बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा योग्य नर्स (दाई) को नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए। नर्स का यह काम हो कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गाँवों में बच्चा जनाने का काम करे। समिति उस सदस्य से जिनके यहाँ नर्स बच्चा जनावे आठ आने फीस ले और उसमें से चार आने नर्स को दे दे। जो लोग कि समिति के सदस्य न हों उनसे समिति एक रुपया फीस ले किन्तु नर्स को केवल चार आना ही दिया जाय। हाँ जो निर्धन हों फीस न दे सकते हों उनसे फीस न ली जाय। बड़ी समिति का चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गाँवों में जाकर वहाँ जो भी बीमार हों उन्हें दवा दे। प्रत्येक गाँव में तीसरे दिन चिकित्सक जाया करे। इस बीच में समिति का मन्त्री वह दवा जो चिकित्सक बतला जाय, रोगियों को देता रहे यदि किसी रोगी को देखने के लिए चिकित्सक को उसके घर

जाना पड़े तो उस सदस्य से समिति एक या दो आना फीस ले और जो सदस्य न हों उनसे फीस दुगनी ली जाय और उनको दवा मुफ्त न दी जाय। हाँ जो बहुत निर्धन हों उनसे फीस बिलकुल न ली जावे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा वरन रोगों से बचने का उपाय बताना भी उसका कर्तव्य होगा। मास में एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनमे बचने का क्या उपाय है। इसी प्रकार समिति की नर्स गर्भवती स्त्रियों का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिए इसकी शिक्षा दे। जब कभी समीपवर्ती स्थान में मेला अथवा बाजार लगे तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहाँ विशेषकर स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार करना चाहिए।

यह सामूहिक समितियाँ मिलकर तहसील समितियों का संगठन करें। समितियों का कार्य केवल ग्राम समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना तथा जिले के स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों से लिखा पढ़ी करके जब कभी उस तहसील के किसी भाग में बीमारी फैल रही हो उसे रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। सामूहिक समितियों तथा ग्राम समितियों के प्रतिनिधि तहसील समितियों में जायेंगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से ज़िले के मेडिकल आफिसर तथा ज़िला बोर्ड के अधिकारियों को गाँवों मे बीमारी फैलने के समय सफलता पूर्वक चेतावनी दी जा सकती है और उनसे सहायता मिल सकती है।

प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ्य-रक्षक समिति का संगठन होना चाहिए, जो गांवों में काम करने के लिए चिकित्सकों तथा

दाइयों को शिक्षा दे। ध्यान रहे चिकित्सकों की शिक्षा में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि वे देशी जड़ी बूटियों के उपयोग को अवश्य जान जावें जिससे कि गाँव में उत्पन्न होने वाली औषधियों का विशेष उपयोग हो सके। प्रान्तीय समिति आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण कर तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार कार्य करने के लिए साहित्य प्रकाशित करें। प्रान्तीय समिति को उन दाइयों में से जो इस समय गाँवों में दाई कर्म करती हैं, साफ, चतुर तथा कम आयु वाली दाइयों को छाँट लेना चाहिए और छत्रिवृत देकर दाई के कार्य की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने गांवों में भेज देना चाहिए। सामूहिक समितियाँ इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें, चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिए जो ग्रामीण हों और गाँवों में रहना पसन्द करें। आरम्भ में से भिन्न भिन्न आयुर्वेदिक विद्यालयों में से निकले हुए युवक छाँट लिए जांय तथा उन्हें कुछ आवश्यक शिक्षा देकर गाँव में भेज दिया जाय। इसके उपरान्त गाँवों मे रहने वाले अथवा जो गांवों का जीवन पसन्द करें उन शिक्षित युवकों को प्रान्तीय समिति एक विद्यालय स्थापित करके ग्राम चिकित्सक की उपयुक्त शिक्षा दे।

प्रान्तीय सरकार तथा ज़िला बोर्ड मिलकर ग्राम समितियों के चिकित्सकों को आधे वेतन दें। आधा वेतन ग्राम समितियाँ दें। प्रान्तीय संस्था एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तथा फिल्म तैयार करावे तथा मैजिक लैन्टर्न के लिए स्लाइड तैयार कराके गांवों में भेजे। इस प्रकार यदि संगठित रूप में स्वास्थ्यरक्षा-आन्दोलन चलाया जाया तो गांवों में स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हल हो सकती है। हर्ष का विषय है कि प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर ध्यान दिया है और अकिधकाधिक वैद्य गांवों में नौकर रक्खे जा रहे हैं।

—:o:—

नवाँ परिच्छेद

ग्रामीण शिक्षा

पिछले परिच्छेदों में हमने भारतवर्ष के गांवों की जो वर्तमान दयनीय और दुखद अवस्था है उसका हमारे पाठकों को परिचय कराने का प्रयत्न किया है। सैकड़ों वर्षों मे हमारे गांवों का शोषण होता चला आ रहा है और उसने उनकी आर्थिक स्थिति को अत्यन्त भयावह बना दिया है। गांवों में फैली भूख और बेकारी इसका सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। लेकिन धन का ह्रास ही हमारे गांवों की एक मात्र समस्या नहीं है। धनके इस ह्रास के साथ साथ हमारे गांवों में जन ह्रास भी अत्यन्त तेज़ी के साथ होता जा रहा है। सामाजिक और धार्मिक रूढ़ी वादिता के हमारे ग्रामीण बहन और भाई आज पूरी तरह से शिकार बने हुए हैं। अशिक्षा का गांवों मे साम्राज्य स्थापित है। गांव वालों की मनोवृत्ति आज इतनी दूषित और गिरी अवस्था में है कि उनको अपनी गिरी हुई हालत से तनिक भी असंतोष नहीं जान पड़ता। जीवन की सारी मुसीबतों और कठिनाइयों को वह एक ईश्वरीय कोप का परिणाम मानते हैं और उनका किसी प्रकार अन्त किया भी जा सकता है इस बात की तो उनको कल्पना तक नहीं होनी। भाग्य और कर्म के अत्यन्त शून्य सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास होने के कारण वे अपने आत्म विश्वास को एक प्रकार से बिलकुल खो चुके हे और उनका जीवन सम्बन्धी दृष्टि कोण इतना निराशा वादी बन गया है कि उनको उसमें सुधार करने के लिए तनिक भी उत्साह नहीं होता। गांवों के कार्य कर्ताओं को प्राय: गांवों के रहने वालों के प्रति यह शिकायत करते हुए सुना

गया है कि उनको स्वयं ही अपनी स्थिति के सुधारने की चिन्ता बहुत कम होती है, और अगर उनको कुछ आवश्यक सुधार काम में लाने के लिए कहा भी जाता है तो उनको काम में लाने के लिए वे बहुत कम उत्साह प्रकट करते हैं। अत: इस बारे में कोई दो मत नहीं हो सकते कि गांवों का पुनरुत्थान उसी समय सम्भव हो सकता है जब कि गांव वालों की इस मनोवृत्ति को ही बदल दिया जावे। आज जो निराशावाद, उत्साहहीनता, और उदासीनता उसमें पाई जाती हैं जब तक इनका नाश नहीं हो जाता गांवों की चतुर्मुखी समस्याओं का ठीक ठीक हल ढूंढ निकालना असम्भव सा ही है। अब तक देश में ग्रामोद्धार की जो भिन्न भिन्न स्थानों में योजनाएं चलाई गईं और उसमें कोई आशा जनक सफलता नहीं मिली इसका एक मूल कारण यह है कि गांव वालों की वर्तमान मनोवृत्ति बदलने का कोई प्रयत्न सफलता पूर्वक नहीं किया जासका। इसलिए इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं कि गांवों की अगर सबसे महत्वपूर्ण और केन्द्रीय समस्या कोई है तो वह गांव के रहने वालों की मौजूदा मनोवृत्ति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की ही हो सकती है। हमें उनमें नवीन उत्साह और आत्म विश्वास का संचार करना होगा, और भाग्य और कर्म के प्रति क्रिया-वादी सिद्धान्तों के असर से उनको मुक्त करना होगा। जब तक उनमें यह विश्वास उत्पन्न नहीं हो जाता कि उनकी मोजूदा गिरी हुई अवस्था का कारण कोई ईश्वरीय कोप नहीं है बल्कि मनुष्य का ही कोप है, और उसका अन्त करने की शक्ति भी मनुष्य में ही है, वे अपने निराशावादी दृष्टि कोण को नहीं छोड़ सकते। अब सवाल यह है कि उनको यह विश्वास हो कैसे, उनकी मौजूदा मनोवृत्ति को किस प्रकार बदला जावे?

हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि गांव वालों की मौजूदा मनोवृत्ति का कारण बहुत कुछ हद तक वे परिस्थितियाँ ही हैं जिनके बीच में वे जन्म लेते हैं, उनका पालन और पोषण होता है, और जिनके बीच में रहते रहते ही वह अपनी जीवन यात्रा को समाप्त भी कर देते हैं। जो किसान बालक जन्म से ही कर्ज का बोझ लेकर इस संसार में आता है जो अपने माता पिता को कर्ज और अत्यधिक लगान की चक्की में उम्र भर पिसते हुए देखता है और जिसको अपने लिए भी इससे उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता, वह अगर जीवन में आशा और उत्साह से सर्वथा अछूता रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? और इस वास्ते गांव वालों की मौजूदा मनोवृत्ति को बदलने के लिए इन परिस्थितियों के बदलने की अत्यन्त आवश्यकता है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। पर एक बात और है जिसका महत्व भी कम नहीं है, और वह है उनमें फैली हुई मौजूदा अशिक्षा का अन्त करना और शिक्षा के द्वारा उनमें एक विचार-क्रान्ति उत्पन्न कर देना। किसी भी मनुष्य या समूह की मनोवृत्ति बदलने का एक अत्यन्त कारगर उपाय उनमें विचार क्रान्ति उत्पन्न कर देना है, जिसका सबसे सरल उपाय शिक्षा ही है। अत: ग्रामीण जनता की शिक्षा का सवाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वह अन्य बुनियादी आर्थिक और सामाजिक सवालों से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रखता है।

शिक्षा से हमारा अर्थ केवल इतना ही नहीं होना चाहिये कि हम गांव वालों को केवल लिखना और पढ़ना सिखा दें। इसमें कोई शक नहीं कि हमारी शिक्षा-योजना

मे लिखने पढ़ने को एक आवश्यक स्थान प्राप्त होगा। हम ये चाहेंगे कि गांव का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह प्रौढ़ हो अथवा युवक, स्त्री हो अथवा पुरुष पढ़ना और लिखना सीखे। पर हमारे लक्ष्य का यहीं पर अन्त नहीं हो जाता। शिक्षा से हमारी कल्पना अधिक व्यापक और ऊँची होगी। हम गांवों में इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करना चाहेंगे जो उनकी मनोवृत्ति को एक दम बदल दे। हम जीवन सम्बन्धी उनके दृष्टि बिन्दु में ख़ास तरह का परिवर्तन करना चाहेंगे। आज जिस प्रकार के सामाजिक और धार्मिक रूढ़ीवाद का असर हमारे गांव वालों पर देखने को मिलता है उससे हम उनको सर्वथा मुक्त करना चाहते हैं। उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि उनका सामाजिक दृष्टि कोण अधिक उदार बने, उनमें स्वावलम्बन की भावना का उदय हो, उनमें अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, और वे श्रम के महत्व को (Dignity of labour) समझें। अशिक्षा के कारण जो आज बहुत से कुसंस्कार गांव वालों में पाए जाते हैं, उनमें आपस मे जो द्वेष और लड़ाई झगड़ा देखने को मिलता है, और आपस के सहयोग की भावना का जितना आज उनके जीवन में अभाव है उसका हम अन्त करना चाहते हैं और शिक्षा के प्रचार द्वारा ग्रमीण जीवन को अत्यन्त सुखी और सम्पन्न बनाना हमारा लक्ष्य है। लेकिन जिस तरह की शिक्षा हम गाँव के भाई और बहिनों को देना चाहते हैं उसका एक विशेष लक्षण और होगा। हमारा ध्येय होगा शिक्षा के द्वारा उनको एक अच्छा नागरिक बनाना, और जीविकोपार्जन के लिए उन्हें पूरी तरह से योग्य और उपयुक्त बनाना। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि अपने

शिक्षा काल में कोई न कोई ऐसा उपयोगी कार्य सीखें जिसके द्वारा वे अपने और अपने परिवार वालों का पालन पोषण कर सकें। सारांश यह है कि ग्रामीण शिक्षा की योजना ऐसी होनी चाहिए जो गांव वालों में एक मानसिक क्रान्ति पैदा कर सके और उसकी सर्वाङ्गीय उन्नति मे सहायक हो। इस प्रकार की शिक्षा वही हो सकती है जो एक खास लक्ष्य को सामने रख कर दी जावे और जिसको किसी मानव समाज को अधिक सुखी बनाने वाले जीवित आदर्श से प्रेरणा मिले। इस शिक्षा का भार भी ऐसे ही व्यक्तियों पर होना आवश्यक है जो अपनी महत्वपूर्ण जिम्मेवारियो को उठाने के सर्वथा योग्य हों। उन व्यक्तियों को स्वयं अपना उदाहरण ग्रामीण जनता के सामने पेश करना होगा। ग्रामीण जीवन से इनका प्रेम और उसी की समस्याओं को सहानुभूति पूर्वक समझने और उनको हल करने की उनमें इच्छा होना अनिवार्य है। वे लोग जो शिक्षा के कार्य का सच्चा महत्व नही समझते है, और जो उसको अपने जीविकोपार्जन के लिये एक पेशा मात्र समझते है उनके हाथों मे ग्रामीण शिक्षा का कार्य देना गलत होगा। ये कार्य तो सफलता पूर्वक वे ही लोग चला सकते हैं, जो स्वयं एक आदर्श विशेष से प्रेरित हों और उसको अपने जीवन का एक लक्ष्य मान कर चलें। अतः शिक्षा योजना के साथ साथ सच्चे शिक्षकों की समस्या का भी हल हमे सोचना होगा।

शिक्षा के सम्बन्ध मे जो कुछ हम ऊपर लिख आए हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण जनता को शिक्षा के लिए प्रधानतः तीन बातों की आवश्यकता है:—(१) हमारी शिक्षा योजना का आधार मानव जीवन के किसी आदर्श विशेष पर हो, (२) वह योजना इस प्रकार की हो कि वह मनुष्य का सर्वांगीय विकास करने मे सहायक सिद्ध हो, और उसको प्राप्त करने के

पश्चात प्रत्येक व्यक्ति एक सफल नागरिक तो बने ही साथ ही साथ वह अपनी जीवन की जरूरियातों को भी सफलता पूर्वक पूरी करने के लिये योग्य साबित हो, और (३) अन्तिम शर्त यह है कि शिक्षा का कार्य उन लोगों के हाथ में हो जो स्वयं उस आदर्श विशेष से प्रेरित हों और जो अपने व्यक्तिगत जीवन द्वारा लोगों के सामने एक उदाहरण उपस्थित कर सकें।

ऊपर जो दृष्टि कोण हम रख चुके हैं उनको ध्यान में रखते हुए हम वर्तमान शिक्षा प्रणाली के संबन्ध में अब तनिक विचार कर लेना पसन्द करेंगे। सबसे पहली बात जिसकी ओर हमारा ध्यान इस सम्बन्ध में जाता है वह है मौजूदा हालत में शिक्षा की कमी। भारतवर्ष में शिक्षित लोगों की संख्या ८ या ६ प्रतिशत है। और इन अंकों का महत्व पूरा पूरा समझने के लिए दो बातों का ख्याल करना बहुत आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि शिक्षित से हमारा अर्थ उस व्यक्ति से है जो कोई एक भाषा लिखना और पढ़ना जानता है। दूसरी बात यह है कि मौजूदा हालत में शिक्षा का थोड़ा बहुत जो कुछ भी प्रचार है वह अधिकतर शहरों तक ही सीमित है, और गाँवों की इस मामले में भी ऐसी ही अवहेलना की गई है जैसी कि अन्य मामलों में की गई है। अतः वर्तमान शिक्षा का एक दोष तो (या गुण ?) यही है कि इसका प्रचार अभी तक ग्रामीण जनता में तो नहींके बराबर है। इसको हम गुण भी कह सकते हैं, क्यों कि यह प्रणाली इतनी बेकार साबित हुई है कि जितना कम इसका प्रचार हुआ है उतनी ही कम हमारे देश को हानि हुई है। अब हम मौजूदा शिक्षा प्रणाली की अन्य महत्वपूर्ण कमियों का संक्षेप में वर्णन करना उचित समझेंगे।

मौजूदा शिक्षा प्रणाली की कमियों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि जिस उद्देश्य से इसको जन्म दिया गया है उसको

अच्छी तरह जान लें। जब ब्रिटिश हुकूमत ने मुल्क पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया और उन पर राज्य प्रबन्ध का उत्तरदायित्व आ गया, तो उनको देश के अन्दर एक ऐसी श्रेणी को उत्पन्न करना आवश्यक जान पड़ा, जो उनकी हुकूमत को चलाने में सहायक हो सके, और जिसमें राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र गौरव, और आत्म-सम्मान का लव-लेश न हो; एक ऐसी श्रेणी जो अपनी सभ्यता और संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ हो। इस प्रकार मौजूदा शिक्षा द्वारा भारत-वासियों की एक ऐसी पिछलग्गू और जी हजूरों की कृपाजीवी जमाअत तैयार की गई जिसके लिए सिवाय सरकारी नौकरी करने के और कुछ नहीं रह गया और जिसकी न इससे स्वतंत्र कोई आकांक्षा रह गई और न शक्ति और योग्यता। अतः मौजूदा शिक्षा प्रणाली का सब से तात्विक दोष यहीं है कि वह किसी भी उच्च आदर्श से प्रेरित नहीं है, और देश के नौजवानों को जीवन सम्बन्धी लक्ष्य से सर्वथा शून्य रखती है। मौजूदा शिक्षा-प्रणाली का दूसरा बड़ा दोष यह है कि साधारण शिक्षा के अतिरिक्त बालकों को अन्य कोई ऐसा हुनर या कार्य नहीं सिखाया जाता जो ग्रामीण परिस्थितियों के अनुकूल हो, और जो उनको जीविकोपार्जन में मदद दे सके। इसी का परिणाम हम आज इस रूप में यह देख रहे हैं कि गाँव का कोई युवक अगर थोड़ी सी भी शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो उसे ग्रामीण जीवन से घृणा हो जाती है, गाँव का वातावरण उसे अपने लिए अनुपयुक्त मालूम पड़ने लगता है, अपने बाप दादों के धन्धों से और अन्य प्रत्येक प्रकार के शारीरिक परिश्रम से उसको अरुचि हो जाती है, उसे वह अपनी शान के विरुद्ध समझने लगता है, और इन सब बातों का अन्तिम परिणाम यह होता है कि वह गाँव को तिलाँजलि देकर किसी शहर के दफ्तर में बाबूगिरी की तलाश पर निकलता है और जब बीसियों जगह अपमानित होने के बाद उसे कोई

क्लर्की मिल जाती है तो अपने को धन्य मानता है और दासता की उसी दशा में अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। तीसरा महत्वपूर्ण दोष आधुनिक प्रणाली का यह है कि वह हमारे नौजवानो के दिल और दिमाग को गुलाम बना देती है। पाठशालाओं का वातावरण, अध्यापकों की मनोवृत्ति और मौजूदा पाठ्यक्रम, जिसका एक मात्र लक्ष्य आरम्भ से भारतीय विद्यार्थियो के मस्तिष्क मे देश, और उसकी सभ्यता तथा इतिहास के प्रति घृणा और पाश्चात्य सभ्यता की उच्चता उत्पन्न करना है, इस स्थिति के लिए बहुत कुछ जिम्मेवार हैं। इसके अतिरिक्त मौजूदा शिक्षा हमारे गाँवों मे सेवा का भाव बिल्कुल उत्पन्न नहीं करती और न पढ़े लिखे लोगों मे यह भावना उत्पन्न होती है कि वे अपने गाँव को हर प्रकार से एक रहने योग्य स्थान बनाने का प्रयत्न करें। वे तो जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है गाँवों को छोड़ कर शहर मे जाकर बस जाना अपना ध्येय बना लेते हैं। मौजूदा ग्रामीण शिक्षा की एक बड़ी कमी यह है कि जब बालक एक बार पाठशालाओं में कुछ पढ़ना लिखना सीख भी लेते हैं, तो स्कूल छोड़ने के बाद वे अपना पढ़ा पढ़ाया सब भूल जाते है और उसकी वजह यह होती है कि गाँव में लिखने पढ़ने की कोई सुविधा न मिलने से, पुस्तकालय और वाचनालय के अभाव मे, उनको बाद में पढ़ने लिखने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता।

यह तो हम देख चुके कि जो शिक्षा प्रणाली आज मौजूद है वह सर्वथा आदर्श हीन है, और जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है वह हमारे गाँव के बहिनों और भाइयों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। पर इसके साथ साथ एक और खराबी जो आज ग्रामीण शिक्षा के संबंध में पाई जाती है वह शिक्षकों की भी है। शिक्षक जैसे कि होने चाहिये वैसे नहीं होते। उनकी स्वयं की

मनोवृत्ति गिरी हुई होती है, ग्रामीण जीवन से उनको कोई प्रेम और सहानुभूति नहीं होती और अपने कार्य की गुरुता को वह बहुत कम समझते हैं। अतः हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण शिक्षा की मौजूदा स्थिति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की और उसको सजीव और आदर्श युक्त तथा व्यावहारिक दृष्टि से लाभदायक बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

हमारी ग्रामीण शिक्षा की योजना किस प्रकार की हो, इस संबंध मे सिद्धान्त की दृष्टि से हम ऊपर विचार कर चुके हैं। अब हम उन सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा की किसी ऐसी योजना में वास्तव में क्या क्या बातें होनी चाहिए इस बारे मे तनिक विस्तार से विचार करेंगे।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि हमारी ग्रामीण शिक्षा का आदर्श ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा हम गाँवो के बालकों में ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न कर सकें, और उनके मन में अपने राष्ट्र के प्रति सच्चे सेवा भाव संचार कर सके। गाँवों को वर्तमान गिरी हुई हालत मे असंतुष्ट होकर शहरो में जाकर रहने की जो प्रवृति आज जोरों के साथ बढ़ती जा रही है उसका एकदम अन्त होना चाहिए और उसके स्थान में बालकों की मनोवृत्ति ऐसी बनाने का प्रयत्न होना आवश्यक है कि वे शिक्षित होने के बाद अपनी शक्ति और साधन का गाँवों की दशा को सुधारने में उपयोग करें। इसके लिए ज़रूरी है कि पाठशाला, वातावरण, पाठ्यक्रम और शिक्षक का व्यक्तिगत जीवन सब इस प्रकार के हों कि बालक उनसे प्रभावित हो सकें, और अपने जीवन में वह ग्रामीण दृष्टिकोण पैदा कर सकें। पाठशाला के वातावरण के सम्बन्ध मे सब से अधिक ध्यान रखने की बात यह है कि उसमें और घर के वातावरण में एक साम्य हो। इस प्रकार के साम्य को उत्पन्न करना शिक्षाशास्त्र की दृष्टि

से भी आवश्यक है क्योंकि यह तो एक मानी हुई बात है कि वह शिक्षा प्रणाली अत्यन्त दूषित है जिसमें घर और स्कूल का वातावरण सर्वथा मेल नहीं खाता हो। आज हमारे स्कूलों में जहाँ बाहरी अनुकरण की पतित मनोवृत्ति पाई जाती है, वहाँ हमारे घरों में प्राचीनता, अन्ध विश्वास, और रूढ़ी वाद का बोल वाला होता है। दोनों ही दशाएं अवांछनीय हैं, और इनमें परिवर्तन की आवश्यकता है। एक ओर जहां हमको अपनी संस्कृत और सभ्यता के प्रति रुचिपूर्ण मनोवृत्ति उत्पन्न करने की आवश्यकता दिखाई देती है, वहां दूसरी ओर हमें आधुनिक जीवन के प्रति अधिक उदार बनाना है। वातावरण संबंधी दूसरी बात उसमें सादगी और आपसी प्रेम और सेवा भाव उत्पन्न करने का है। वातावरण के बनाने में जहाँ पाठ्यक्रम का असर पड़ेगा वहाँ शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन का उससे अधिक घनिष्ठ संबन्ध रहेगा। पहले हम पाठ्यक्रम के बारे में ही थोड़ा सा विचार करेंगे।

आज हमारे गांवों की पाठशालाओं में जिस प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है वह सर्वथा अनुपयुक्त है। सिवाय भाषा और साधारण हिसाब और कुछ भूगोल या ग़लत दृष्टि कोण से लिखे हुए इतिहास के और कोई भी विषय आज गांव के बालकों को नहीं पढ़ाया जाता। इस पाठ्यक्रम में परिवर्तन की कितनी आवश्यकता है यह साफ़ है। सारे पाठ्यक्रम का केन्द्र कोई ऐसा उद्योग होना चाहिए जो उस गांव की परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल हो और उसी को आधार बना कर अन्य विषयों की शिक्षा बालक को देनी चाहिए, ताकि उसके शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विकास के लिए मार्ग खुले रहें, उसे शारीरिक परिश्रम से घृणा उत्पन्न न होने पावे, और वह कोई उपयोगी धन्धा भी सीख

जावे जिसे वह अपने जीवन निर्वाह का साधन बना सके । इसके अलावा भाषा, भूगोल इतिहास, साधारण गणित का तो ज्ञान कराया जावे ही, किन्तु बालकों को स्वास्थ्य विज्ञान नागरिक शास्त्र, ग्रामीण अर्थ शास्त्र और हमारे देश के वर्तमान राज्यव्यवस्था का भी संक्षेप और स्पष्ट ज्ञान होना अनिवार्य है । लड़कियों को सिलाई, घरों की खफाई, पाक शास्त्र, गान विद्या, बच्चों का पालन पोषण कैसे होना चाहिए आदि आवश्यक बातों का विशेष रूप से ज्ञान कराया जावे । साथ साथ बालकों के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न करना भी आवश्यक है और उनमें अखबार आदि पढ़ने की आदत डालनी चाहिए ताकि उनका बाहरी दुनिया का ज्ञान भी अच्छा हो और आधुनिक जीवन की विशेषताओं से वे सर्वथा अपरिचित और अनभिज्ञ न रहें। वस्तुपाठ द्वारा बच्चों की अनुभव शक्ति को जागृत किया जावे। पढ़ने के साथ साथ खेल और व्यायाम का भी उचित प्रबन्ध किया जावे। खेल और व्यायाम अधिकतर भारतीय ही हों क्यों कि वे कम खर्चीले और अच्छे होते हैं। खेल में बालकों में अनुशासन, सामूहिक रूप से कम करने की प्रवृति, और टीम स्पिरिट (Team Spirit) तथा सेवा भाव अधिक अच्छी तरह पैदा किये जा सकते हैं। और स्वास्थ के लिए खेल व्यायाम कितने आवश्यक हैं यह तो प्रकट है ही। स्वयं सेवक दलों का संगठन इस दिशा मे उपयोगी साबित हो सकता है। गांव के बालकों मे कला और सुन्दरता के प्रति जो आज उदासीनता देखने को मिलती है उसे भी मिटाने की आवश्यकता है। पाठशाला में एक छोटी सी फुलवाड़ी का होना और उसे ठीक प्रकार से रखने में बालकों की सहायता लेना इस दृष्टि से लाभ दायक साबित होगा।

जैसा कि हम ऊपर भी संकेत कर चुके हैं ग्रामीण शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग स्वयं शिक्षक हैं। उसके व्यक्तिगत आचरण का विद्यार्थियों के जीवन पर जितना गहरा असर पड़ सकता है उतना दूसरी किसी चीज़ का नहीं। पाठशाला के वातावरण को बनाने या बिगाड़ने में उसका बहुत कुछ हाथ हो सकता है। अच्छा से अच्छा पाठ्यक्रम भी ग़लत हाथों में पहुँचकर आवश्यक परिणाम उत्पन्न करने में सफल नहीं होगा, और अगर शिक्षक स्वयं आदर्श और चरित्रवान है तो बुरे पाठ्यक्रम से होने वाली बुराइयाँ भी कुछ कम की जा सकेंगी। अतः शिक्षक को चुनने में अत्यधिक सावधानी रखने की ज़रूरत है। ग्रामीण पाठशाला का अध्यापक ऐसा होना चाहिए जिसे स्वयं ग्रामीण जीवन से स्नेह हो, उसके पुनः उत्थान में उसका विश्वास और लगन हो, और चरित्र का जो अत्यन्त ऊंचा व्यक्ति हो। जहाँ तक सम्भव हो इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि वह स्वयं उसी गाँव का या पास के अन्य किसी गाँव का रहने वाला हो ताकि वह गाँव के लोगों का आसानी से प्रेम और श्रद्धा का भाजन बन सके और अपने व्यक्तित्व और आचरण के बल से उनके जीवन को भी प्रभावित कर सके। क्योंकि जैसा हम आगे चल कर देखेंगे प्रौढ़ों के विचारों और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का बालकों पर काफ़ी असर पड़ता है और इस वास्ते, बालकों के विचारों को बदलने के लिए उनके विचारों में भी आवश्यक अनुरूपता लानी होगी।

पाठशाला के वातावरण में और पाठ्यक्रम में उपरोक्त परिवर्तन करने और शिक्षा का कार्य योग्य हाथों में सौंपने का परिणाम अत्यन्त आशाजनक होगा, यह निःसंदेह है। हमारे गाँव के बालकों की इस प्रकार हम काया पलट कर सकेंगे और उनमें

उत्साह और आत्म-विश्वास को लिए एक नवीन मनोवृति का बीजारोपण कर सकेंगे।

हमारे देश में शिक्षा के संबंध में इस प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता तो बड़े बड़े विद्वान लोग महसूस कर रहे थे, किन्तु वे कोई व्यवहारिक योजना उपस्थित करने में सर्वथा असमर्थ रहे। लेकिन महात्मा गांधी ने अब देश का इस मामले में भी पथ प्रदर्शन किया है और वर्धा शिक्षा प्रणाली को जन्म देकर शिक्षा के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन करने की बात उन्होने सोची है। ग्रामीण शिक्षा के लिए जिन आवश्यक गुणों का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं वे सब इस योजना में मौजूद हैं। यह एक विशेष आदर्श को लेकर बनाई गई है, और इसका आदर्श है हमारी प्राचीन सभ्यता की नींव पर युवकों में अहिंसक और राष्ट्रीय मनोवृति को उत्पन्न करना और ग्रामीण जीवन और सभ्यता के प्रति उनमें प्रेम और श्रद्धा के भावों को जागृत करना। दूसरी विशेषता इस योजना की यह है कि इसमें शिक्षा किसी एक ऐसे उद्योग के चारों ओर केन्द्रित की जावेगी जो विद्यार्थी के रुचि और परिस्थिति के अनुकूल हो। उद्योग को शिक्षा का केन्द्र बनाने की उपयोगिता के बारे मे हम ऊपर लिख चुके हैं। इस योजना की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह बताई जाती है कि जहाँ तक शिक्षकों के वेतन सम्बन्धी खर्च का सम्बन्ध है यह स्वावलंबी होगी, क्योंकि विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई चीजों को बेचने से इतनी आय हो सकेगी ऐसी आशा की जाती है। भारतवर्ष की दरिद्रता और महान जन संख्या का अगर हम ध्यान करें तो यह स्पष्ट होते देर न लगेगी कि सारे देश में शिक्षा प्रचार के कार्य में कितना अधिक खर्च होगा। ऐसी हालत में अगर हम किसी ऐसी शिक्षा योजना को कार्यान्वित कर सके जो किसी हद तक स्वावलम्बी भी हो तो इससे अच्छी

बात हो ही क्या सकती है। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती कि वर्धा शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का माध्यम हिन्दोस्तानी होगा। यह योजना केवल प्रारम्भिक शिक्षा से ही ताल्लुक रखती है, और प्रारम्भिक शिक्षा का समय इसमें सात वर्ष रखा गया है अर्थात् सात वर्ष की आयु से शिक्षा की शुरूआत होगी और चौदह साल की आयु पर शिक्षा समाप्त हो जायगी। यह आशा करना अनुचित नहीं कि इन सात वर्षों में बालक पूरी तरह से योग्य नागरिक, राष्ट्रीय विचार वाले, और स्वालम्बी बन कर निकलेंगे। अतः हमारे देश में इस शिक्षा प्रणाली का अच्छा स्वागत हुआ है और जिन प्रांतों में कांग्रेसी मंत्री मंगल कार्य कर रहे थे उनमें इस योजना के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया गया है।

यहां ग्रामीण शिक्षा के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग पर विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। अगर हम वास्तव में चाहते हैं कि ग्रामीण वातावरण में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन हो, तो हमारे लिए यह जरूरी होगा कि हम लड़को के साथ साथ लड़कियों को भी शिक्षा दें। इस सम्बन्ध में एक सवाल यह पैदा होता है कि लड़कियों के लिए पाठशालाएं लड़कों से भिन्न हों, अथवा लड़के और लड़कियों को एक ही साथ शिक्षा दी जावे? दूसरे शब्दों में हमारे सामने सवाल यह है कि सह-शिक्षा होनी चाहिए अथवा नहीं? सह शिक्षा का वैसे तो स्वतंत्र विषय है, परन्तु इस सम्बन्ध में इतना संकेत कर देना आवश्यक है कि यदि हमारा उद्देश्य भविष्य में स्त्री और और पुरुषों का पारस्परिक अगाध सम्पर्क स्थापित करना है। यदि हम चाहते हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री और पुरुष निःसंकोच भाव से मिल जुल कर कार्य करें, तो यह आवश्यक है कि हम आरम्भ से ही बालक और बालिकाओं को सम्पर्क में लावें और उनको

एक दूसरे का अध्ययन करने और एक दूसरे के स्वभाव से परिचित होने का अवसर दें। इसके अलावा आर्थिक दृष्टि से भी यह चीज़ लाभदायक होगी, क्योंकि लड़के और लड़कियों के लिए अलग अलग पाठशालाएं चलाना बहुत खर्चीला होगा और भारत जैसे गरीब देश के लिए यह व्यय साध्य नहीं होगा। अत: आर्थिक और सामाजिक प्रगति के दोनों ही दृष्टि कोणों से सह-शिक्षा का हमें अधिकाधिक प्रचार करना चाहिए। तब ही लड़कियों की पढ़ाई का प्रश्न हम सफलता पूर्वक हल भी कर सकेंगे। बिना लड़कियों को शिक्षित बनाए हम घरों का वातावरण नहीं बदल सकेंगे जो कि किसी भी प्रकार की विचार क्रान्ति करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अभी तक हमने इसी सम्बन्ध में विचार किया है कि हमारी शिक्षा का आधार क्या हो, वह किस आदर्श से प्रेरित हो और उसका रूप क्या हो। अब इस सम्बन्ध में दूसरा सवाल यह है कि शिक्षा प्रचार का कार्य किसके जिम्मे हो। यद्यपि शिक्षा प्रचार का कार्य बहुत सी जगह सहकारिता के सिद्धान्त पर चलाया गया है और पंजाब की शिक्षा समितिय को इस कार्य में सफलता भी मिली है, फिर भी काय की व्यापकता को देखने हुए हमें यही स्वीकार करना पड़ेगा कि गांवों में प्रारम्भिक शिक्षा की ज़िम्मेवारी सरकार को अपने ऊपर ही लेनी चाहिए। राष्ट्र को शिक्षित बनाना तो प्रत्येक राज्य का प्रथम कार्य है, और कोई कारण नहीं कि हमारा ही देश इस मामले में अपवाद रहे। सरकारी शिक्षा विभाग को इस कार्य में अन्य सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी संस्थाओं से सहायता लेनी चाहिए।

शिक्षा योजना की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य

(Compulsory Primary education) करदे, जैसा कि इस समय भी कुछ प्रान्तों में है। जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं कांग्रेसी मन्त्रीमण्डल इस सम्बन्ध में भी खास तौर से प्रयत्न कर रहे थे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होनी ही चाहिए, वह निःशुल्क भी होना चाहिए, अर्थात् पाठशालाओं में लड़कों और लड़कियो से किसी प्रकार की भी फीस नहीं ली जानी चाहिए। इसके लिए प्रान्तीय सरकारो को जो खर्च करना पड़े उसका वह दूसरे तरीकों से प्रबन्ध करे।

अब तक ग्रामीण शिक्षा के बारे में एक कमी यह भी महसूस की गई है कि पाठशाला छोड़ने के बाद लड़के लड़कियाँ जो कुछ पढ़ चुकते हैं वह बिलकुल भूल जाते हैं और फिर अशिक्षितो की श्रेणी मे जा मिलते है। इसका उपाय यह है कि एक तो विद्यार्थी काल में प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़ने से दिलचस्पी पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिये ताकि विद्यार्थी जीवन के बाद भी उसको पढ़ने लिखने की इच्छा बनी रहे। विविध प्रकार की पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने की आदत डालने से इस प्रकार की दिलचस्पी पैदा की जा सकती है। पर इतने से ही काम नहीं चलेगा। इस बात का भी प्रबन्ध होना चाहिये कि गांव के लोगो को पढ़ने लिखने के लिए आवश्यक और लाभदायक सामग्री बराबर मिलती रहे ताकि उनकी पढ़ने लिखने की इच्छा बराबर जीवित रहे। आज हमारे गांवों में इस प्रकार की सुविधाओं की भी बहुत कमी है, और उपयोगी साहित्य की भी किसी हद तक कमी ह। साहित्य की कमी का कारण साहित्य को पैदा करने वालों की कमी इतना नहीं है, जितनी कि उनको सुविधा और प्रोत्साहन मिलने की है। लेखकों का संगठित होना, और सरकार का प्रकाशकों पर उचित नियंत्रण कायम करना इस सम्बन्ध में आवश्यक है। पढ़ने लिखने के लिए सुविधा गांवों में

पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित करके पैदा की जा सकती है। वाचनालय में एक दो दैनिक, एक दो साप्ताहिक और मासिक पत्र मंगवाए जावें ताकि रोज़ की ताज़ा ख़बरों को जानने के गरज़ से लोग अख़बारों को पढ़ेंगे। पुस्तकालय मे भी अच्छी और उपयोगी पुस्तकों का संकलन किया जावे । इस काम को करने का सर्व श्रेष्ठ ढंग यह होगा कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का शिक्षा विभाग गांवों की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए एक सूची उपयोगी पुस्तकों की जिसमें सब तरह के विषयों का समावेश होना जरूरी है बनावे और इसी प्रकार एक सूची गांव वालों के लिए अख़बारों की भी बनाई जावे और प्रान्त के सब वाचनालयों और पुस्तकालयों में सूची के अनुसार ही पुस्तकें और समाचार पत्र मंगाए जावे । पुस्तके ऐसी हों जो पढ़ने वालों में जीवन के प्रति वैज्ञानिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण पैदा करने में सहायक हो सकें इसके अलावा प्रत्येक प्रान्त में कुछ चलते फिरते (Circulating libraries) पुस्तकालय भी हो जिनमें तनिक कीमती और ऊंचे स्टेन्डर्ड की पुस्तकें रहें इसके अतिरिक्त गांवों में वाद विवाद के लिए क्लब और संस्थाएं भी कायम करने का प्रयत्न किया जावे जहां राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विचार विनमय हो और वाद विवाद हों। ख़ास ख़ास मौकों पर इनाम भी रखे जा सकते हैं। इसी प्रकार हर गांव साल में एक बार खेलों का टूरनामेंट का प्रबन्ध करने की आयोजना की जावे। इस प्रकार गांवों का जीवन भी अधिक सुन्दर और रोचक बन सकेगा, साथ साथ शिक्षा के प्रति लोगों का प्रेम और दिलचस्पी बढ़ेगी, और शिक्षा से होने वाले फ़ायदे उनको अपने रोज़ मर्रा के जीवन में प्रत्यक्ष देखने को मिलेंगे, जो कि किसी भी चीज़ की उपयोगिता बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

अब तक हमने शिक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसका विशेष रूप से गांवों के लड़कों और लड़कियों की शिक्षा से ही ताल्लुक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन लोगों पर समाज के अच्छे या बुरे होने की जिम्दवारी भविष्य में आने वाली है उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जावे। किन्तु इसी चीज को अधिक सफल बनाने के लिए, उसकी प्रगति को अधिक तेज करने के लिए और साथ साथ मौजूदा हालत में कुछ सुधार करने के लिए भी, यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्रौढ़ों की शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध किया जावे। यहाँ हमारा अर्थ प्रौढ़ स्त्री पुरुषों से ही केवल नहीं है, बल्कि स्त्री वर्ग से भी है। यह समझना कठिन नहीं है कि जिन बालकों के माता पिता दोनों शिक्षित हैं, उनके घर का वातावरण अधिक सुधरा हुआ होगा, वे कम रूढ़ीवादी होंगे और प्रगति शील विचारों की अधिक कद्र करेंगे। इस प्रकार वे न केवल अपने मौजूदा वातावरण को पहले से अच्छा बना सकेंगे, लेकिन उनके बच्चों पर भी इसका अच्छा असर होगा और उनको दी गई शिक्षा अधिक कारगर और सफल साबित होगी। क्योंकि बालकों के पालन और पोषण की जिम्मेवारी माता पिता की अपेक्षा माता पर ही अधिक रहती है और उसके चरित्र और विचारों का बालक पर अधिक प्रभाव पड़ता है, प्रौढ़ स्त्रियों को शिक्षित बनाना किसी भी दशा में कम आवश्यक नहीं है। अतः प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में अब हम कुछ विचार करेंगे।

प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालाओं की योजना करनी होगी। स्त्री और पुरुषों की शिक्षा का प्रबन्ध अलग अलग करना होगा। ये कार्य ग़ैर सरकारी कार्य कर्ताओं को जिनमें सेवा भाव है अपने ऊपर लेना चाहिए, हां गांव की पंचायत या शहर की म्यूनिसिपैल्टी से उनको अपने इस कार्य में सहायता मिल

सकेगी। सहकारिता के सिद्धान्त पर प्रौढ़ शिक्षा का कार्य अधिक अच्छा चल सकेगा। जैसा कि पंजाब में संभव हुआ है, और इस मामले में पंजाब और यू० पी० का अन्य प्रांतों को अनुकरण करना चाहिए। स्त्री और पुरुष के लिये अलग अलग समितियां क़ायम होनी चाहिये। प्रयत्न इस बात का होना चाहिये कि स्त्रियों की समिति में गांव की अधिक से अधिक संख्या में स्त्रियां और पुरुषों की समिति में अधिक से अधिक संख्या में पुरुष शामिल हों। गांव के सेवा भावी और पढ़े लिखे स्त्री और पुरुष को इस कार्य में अपना थोड़ा सा समय देना होगा, तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में अध्यापक आदि का जो कुछ खर्च हो वह समिति के सदस्य चन्दे के रूप में इकट्ठा करके पूरा करें। चाहे सदस्यता की फीस की शक्ल में रुपया एकत्रित किया जा सकता है। फीस नक़दी में ही ली जावे इस बात पर ज़ोर नहीं देना चाहिए। किसी चीज़ के रूप में भी, जैसे अनाज। समिति के पास इस प्रकार जो चीज भी एकत्रित हो उसे या तो वे सदस्य ही ख़रीद सकते हैं जिनको उन चीज़ों की आवश्यकता हो, या फिर वे बाज़ार में बेची जा सकती हैं। अगर गाँव में या पास में कोई क्रय-विक्रय सहकारी समिति हो तो उसे वह चीजें बेची जा सकती हैं। किताबी शिक्षा के अलावा गाँव वालों को अख़बार तथा अन्य पुस्तकों को पढ़ने की आदत भी डालनी चाहिए। इसके लिए समिति अपना अलग पुस्तकालय वाचनालय आदि भी चाहे तो स्थापित कर सकती है या गाँव के वाचनालय और पुस्तकालय का उसके सदस्य उपयोग कर सकते हैं और उनको कुछ सहायता दे सकते हैं। अगर गांवों में रामायण मण्डल जैसी कोई चीज बनाई जावे जहां नियम से गांव वाले रामायण सुनने को एकत्रित हों, तो शिक्षा तथा अन्य दृष्टि से यह अत्यन्त उपयोगी साबित

होगा। ऐसे मौको पर स्त्री और पुरुष एक ही जगह एकत्रित हो सकते हैं। इसके अलावा एक चीज और है जो प्रयोग करने लायक है। बजाए इसके कि इस प्रकार के धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन के मौकों पर केवल एक धर्म की पुस्तको और ग्रन्थों का पाठ किया जावे और उनके बारे मे चर्चा हो, यह बेहतर होगा कि अलग धर्मो के बारे में चर्चा हो और धर्म की एकता का पहलू स्पष्ट किया जावे। यह चीज साम्प्रदायिकता के विष को कम करने मे सहायक हो सकेगी। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म को अच्छी तरह से समझ सकेंगे और आपस मे सहानुभूति उत्पन्न करने का एक साधन मिलेगा। इसके अलावा स्वास्थ्य विज्ञान सम्बन्धी बातों को समझने के लिए तथा अन्य भौतिक शिक्षा के लिए मेजिक लेन्टर्न का (Magic lantern) उपयोग अच्छी प्रकार करना चाहिए। स्त्रियों को बच्चों के पालन-पोषण और घर की सफाई के कामों मे अधिक होशियार बनाना चाहिए। सारांश यह है कि ग्रामीण शिक्षा की पूर्णता के लिए केवल लड़के और लड़कियों को शिक्षित बनाना काफी नही होगा, प्रौढ़ स्त्री और पुरुष की शिक्षा का भी मार्ग ढूंढ़ निकालना होगा।

अगर ग्रामीण शिक्षा के सम्बन्ध मे हमने जिन विचारों का प्रतिपादन किया है उनके अनुसार बाल और प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्रों में कार्य किया जावे, तो यह निःसन्देह है कि गांव वालों के दृष्टि कोण में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है और उनमें एक नई विचार क्रान्ति उत्पन्न की जा सकती है जो उनके पुनः उत्थान की पहली शर्त है।

दसवां परिच्छेद

गाँवों का सामाजिक जीवन

आज भारतीय गाँवों की दशा जैसी शोचनीय है वह किसी से छिपी नहीं है। गाँवो का सर्वाङ्गीय पतन हो रहा है। जहाँ भारतीय ग्राम पहले एक जीवित संस्था थी वहाँ अब मनुष्यों की छांटन् निवासी करता है। यह तो पहले परिच्छेद में ही लिखा जा चुका है कि जाति का निर्माण गाँवों में निवास करने वाले लोग करते हैं। गाँव से शहरों में जाकर कुटुम्ब शक्ति हीन हो जाते हैं। आज तो हमारे गाँवों की दशा यह है कि वहाँ तीसरी श्रेणी के ही लोग रहते हैं भला वह एक उन्नतिशील जाति को किस प्रकार जन्म दे सकते है।

आज गाँवों की दशा यह है कि यदि वहाँ कोई भी महत्त्वाकांक्षी शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति हुआ, अथवा किसी ने यथेष्ट शिक्षा प्राप्त कर ली, या किसी के पास कुछ पूँजी इकट्ठी हो गई तो वह गाँव छोड़कर शहरों में रहने लगता है। क्रमशः जमींदार भी जहाँ तक सम्भव होता है गाँव छोड़कर शहरों में ही रहना पसंद करता है। वह जोंक की भाँति किसान का शोषण करता है और उस धन को शहरों में बैठ कर खर्च करता है। इस सब का फल यह हो रहा है कि गाँव-पूँजी, मस्तिष्क, स्वास्थ, और साहस की दृष्टि से दिवालिए होते जा रहे हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हमारे ग्रामीण समाज की नींव ही खोखली हो गई है अतएव उसका पतन अवश्यम्भावी है।

स्वास्थ, मस्तिष्क, पूँजी और साहस का गाँवों से प्रवास होने के कारण गाँव में शक्ति हीन, निर्बल, निर्धन और साहसहीन व्यक्ति ही रह जाते हैं। इस प्रकार की जनसंख्या का यदि कुछ लोग शोषण करते हैं, ऐसे लोग यदि नितान्त भाग्यवादी और निराशावादी बन गए हैं, उनके जीवन में घातक संतोष ने अड्डा जमा लिया है, वे रूढ़ियों के दास तथा नितान्त अकर्मण्य बन गए हैं तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। इस भयंकर परिस्थिति का इससे अच्छा परिणाम हो भी क्या सकता था।

यदि देखा जावे तो आज का राजनैतिक तथा आर्थिक संगठन ऐसा बन गया है कि शहरों में रहने वाले गाँव वालों का शोषण करने में ही गौरव समझते हैं। राज्य के उन विभागों को ले लीजिए जिनका सम्बन्ध गाँवों से पड़ता है तो आपको ज्ञात होगा कि वे भी गाँव वालों के शोषक बने हुये हैं। पटवारी से लेकर ज़िला हाकिम तक रेवैन्यू विभाग के कर्मचारी, नहर के पतरौल, पुलिस के दरोग़ा, शिक्षा, स्वास्थ सहकारिता विभाग के सुपरवाइज़र, यहाँ तक कि ग्रामसुधार विभाग के औरगैनाइज़र भी गाँव वालों की दृष्टि में शोषक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि पटवारी, कानूनगो, तहसीलदार, तथा पुलिस के लोग गाँव वालों पर अत्याचार करके उनका शोषण करते हैं तो गाँव का शिक्षक, स्वास्थ विभाग का कर्मचारी, नहर का पतरौल, सहकारिता विभाग और ग्राम सुधार विभाग के औरगैनाइज़र उनको दबाकर, चालाकी से उनके हितैषी बनकर और कभी कभी अन्यायपूर्ण ढंग से उनका शोषण करते हैं। किसी विभाग का भी कर्मचारी क्यों न हो वह अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है कि गाँव में जाकर पूड़ी दूध दही पर हाथ साफ करे, अपने सामान को ले जाने के लिए बैल और गाड़ी मंगवा ले।

पुलिस तथा रैवेन्यू विभाग के लोग तो इतने पर ही संतोष नहीं करते।

पिछले सौ वर्षों में लगातार शोषित होने के कारण ग्रामीण जनता की मनोवृत्ति ऐसी बन गई है कि वह इस अत्याचार को चुपचाप सहन कर लेती है। केवल गाँव वालों का शोषण ही होता हो यही बात नहीं है उनको पद पद पर अपमानित भी होना पड़ता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में ग्रामीण अथवा किसान शब्दों का अपमान जनक समझा जाना किस बात का द्योतक है। अपमान सहते सहते ग्रामीण जनता में स्वाभिमान का लेश मात्र भी नहीं रह गया है।

दुर्भिक्ष, महामारी, राज्यकर्मचारियों का अत्याचार, और शोषण, महाजन का ऋण, और ज़मींदारों का बोझ इन सबने मिलकर भारतीय किसान को पक्का भाग्यवादी बना दिया है। वह यह समझ बैठा है कि भाग्य में दुख लिखा है तो सुख कहाँ से मिल सकता है। इस भाग्यवाद ने उसे मृत्यु का संतोष प्रदान कर दिया है।

इस भाग्यवादिता और घातक संतोषी मनोवृत्ति का फल यह हुआ कि ग्रामीण अकर्मण्य बन गए। जब सब कुछ भाग्य के लिखे अनुसार ही होना है तब पुरषार्थ की आवश्यकता ही क्या है। इस नैराश्यपूर्ण वातावरण का अवश्यम्भावी परिणाम जो होना था वह हुआ, ग्राम्य संस्था मृतप्राय: हो गई। जहाँ गाँवों में भाई चारे की भावना काम करती थी, गाँव में बहुत से जन-हित कार्य सामूहिक रूप से होते थे, सारा गाँव बड़े कुटुम्ब के समान होता था वहाँ आज ईर्षा द्वेष कलह की भावना ने घर लिया।

उधर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण तथा उनके छुटभय्या देशी शोषकों के कारण गाँवों में निर्धनता का नग्न नृत्य होने लगा। निर्धन व्यक्ति का पतन होते कितनी देर लगती है। वही भारतीय ग्रामों का हाल हुआ। आज जो हमें गाँवों का सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त दशा में दिखलाई दे रहा है उसके मूल कारण यही हैं अब हम गाँवों के सामाजिक जीवन पर एक दृष्टि डालेंगे।

गाँवों में मनोरंजन के साधनों का अभाव—

जो लोग कि ग्रामीण जीवन से परिचित हैं वे जानते हैं कि गाँवों का जीवन कितना नीरस है। यह बात नहीं है कि ग्रामीण मनोरंजन के इच्छुक नहीं होते, वास्तव में गाँव के लोग मनोरंजन के इतने भूखे हैं कि रद्दी से रद्दी तमाशे को वे बड़े चाव से देखते हैं। नौटंकी, में रात रात भर जमे रहना किस बात का द्योतक है। यदि कोई रीछ या बंदर नचाने वाला किसी गाँव में पहुँच जाता है तो सारा गाँव उसके पीछे हो लेता है। यहाँ तक कि यदि दो बैल या कुत्ते लड़ते होते हैं देर के लिये ग्रामीण के तो गांव के लोग खड़े होकर उस लड़ाई को देखने लगते हैं। कुछ देर के लिए ग्रमीण केजीवन में जानवरों की लड़ाई से उत्तेजना प्राप्त होती है।

यह तो प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि दिन भर कार्य करने के उपरान्त उत्तम भोजन, विश्राम और मनोरंजन मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये बहुत आवश्यक है। दुर्भाग्यवश ग्रामीण को न उत्तम भोजन ही मिलता है और मनोरंजन का तो उसके जीवन में सर्वथा अभाव है। इस नीरसता का मनोवैज्ञानिक फल यह होता है कि उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। तनिक सा झगड़ा होने पर वह कभी कभी आपे से बाहर हो जाता है और भयंकर फौजदारी होजाती है। यही नहीं मुकदमेदारी में खेत

खेल का आनन्द आता है और उसमें हानि लाभ का विचार न करके वह हार जीत का आनन्द और उत्तेजना अनुभव करने लगता है। बहुत से विद्वानों का कहना है कि मनोरंजन के साधनों का अभाव गाँवों में लड़ाई, झगड़े और मुक़द्दमेबाज़ी की बाहुल्यता का मुख्य कारण है। श्रीयुत डार्लिंग महोदय ने तो यहाँ तक लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मुक़द्दमेबाज़ी भारतीयों का जातीय खेल है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मुकद्दमे-बाज़ी और लड़ाई झगड़ों का मनोरंजन के साधनों के अभाव से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है।

आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के लड़के लड़कियों के लिये तथा पुरुष और स्त्रियों के लिये सुरुचि पूर्ण तथा स्वास्थ-प्रद मनोरंजन के साधन उपलब्ध किये जावें। मनोरंजन के साधनों से गाँव का नीरस जीवन सरस बनेगा और गाँव वालों में जो लड़ाई झगड़े के लिए एक स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न हो गया है वह नष्ट हो जावेगा। इसके लिए नीचे लिखी हुई बातों का प्रबंध करना होगा।

खेल—

लड़कों तथा युवकों को मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ प्रदान करने के लिये तथा उनमें अनुशासन की भावना भरने के लिए खेलों की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही उनसे मनोरंजन भी कुछ कम नहीं होता। किन्तु दुर्भाग्यवश जिस प्रकार हमारे पशुओं, खेती बारी, तथा समाज का पतन हो चुका है उसी प्रकार हमारे खेलों की दशा है। गाँवों में लड़के जिन खेलों को खेलते हैं उनमें ऊपर लिखे गुणों का बहुधा अभाव होता है। हमारे स्कूल तथा कालेजों में विदेशी खेलों का प्रचार है। वे बहुत ही

खर्चीले हैं अतएव उनका गाँवों में प्रचार करना न तो सम्भव ही है और न बुद्धिमत्ता ही कही जा सकती है। हाँ विदेशी खेलो मे एक फुटबाल का खेल ऐसा अवश्य है जिसमें एक उत्तम खेल के सभी गुण मौजूद हैं और वह खर्चीला भी नहीं है। अतएव इस बात की बड़ी अवश्यकता है कि गाँवों के उपयुक्त अच्छे खेल ढूंढ निकाले जावें और उनका गाँवों में, गाँव के स्कूलों में, प्रचार किया जावे। गाँव के समीप ही किसी मैदान को चौरस करके खेल के लिए सुरक्षित कर लिया जावे। जब गाँवों में खेलों का यथेष्ट प्रचार हो जावेगा तो एक गाँव के युवक दूसरेगाँवों से खेल खेला करेंगे। यह खेल ही गाँव वालों के लिए यथेष्ट मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध कर देंगे।

ग्राम सेवा दल—

खेलों के अतिरिक्त लड़कों और युवकों को मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ प्रदान करने के लिए, उनमें सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए तथा उनको योग्य नागरिक बनाने के लिए ग्राम सेवादल की बड़ी आवश्यकता है। प्रत्येक गांव मे एक ग्राम सेवा दल बनाया जावे। ग्राम सेवा दल में एक गांव के बड़े लड़के तथा युवक भर्ती किए जावें। ग्राम सेवा दल के सदस्यों को सेवा का महत्व समझाया जावे। प्रयत्न यह किया जावे कि गांव का प्रत्येक युवक ग्राम सेवा को अपने लिए गौरव समझे। ग्राम सेवा दल निम्नलिखित कार्य करे। होली, दिवाली, दशहरा तथा अन्य अवसरों पर गांव की सफाई करना, टिड्डी तथा अन्य फसलों के शत्रुओं (कीड़े इत्यादि) को मारने में गांव वालों की सहायता करना, विशेष अवसरों पर नाटक, प्रहसन, तथा अन्य खेल तमाशों का आयोजन करके गांव वालों के लिए मनोरंजन के साधन उपलब्ध करना। गांव के रास्तों को ठीक करना और

गाँव में फलों के वृक्ष लगाना। गांव में फलों के वृक्ष लगाने का तो कार्य प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे, एक गांव की सुन्दरता बढ़ेगी, दूसरे खाने के लिए फल मिल सकेंगे। गांव के रास्तों को ठीक करने तथा गांव के समीपवर्ती गड्ढों को भरने में ग्राम सेवादल गांव वालों की सहायता कर सकता है।

नाटक, प्रहसन, सङ्गीत मंडली इत्यादि—

गांवों के नीरस जीवन को सरस और मधुर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम सुधार विभाग अथवा अन्य कोई प्रान्तीय संस्था गांवों के जीवन, उनकी आवश्यकताओं के आधार पर छोटे छोटे नाटक प्रहसन तथा गाने, योग्य लेखकों तथा कवियों से लिखवावें। वही नाटक स्कूलों तथा ग्राम सेवा दल की सहायता से गांवों में खेले जांय। गांव का शिक्षक अथवा अन्य कोई शिक्षित व्यक्ति उनको तैयार करावे। स्टेज, पर्दे अथवा पोशाकों की इन नाटकों में कोई ज़रूरत न होनी चाहिए। चांदनी रात्री में गांव की किसी चौपाल पर या गांव के स्कूल में नाटक हो और गांव के लोग उसे देखें। विशेष अवसरों अथवा त्यौहारों के अवसर पर लड़के सामूहिक रूप से उन गानों को गायें जो कि गांवों के लिए विशेष रूप से लिखवाए गए हैं।

घरों को अधिक आकर्षक बनाना—

जिस प्रकार हमारे गांवों में कोई आकर्षण नहीं रह गया है उसी तरह गांवों में रहने वालों के घरों में भी कोई आकर्षण नहीं है। जब कभी थका हुआ किसान खेतों पर से आता है तो घर में उसके लिए ऐसा कोई भी आकर्षण नहीं होता कि जिससे उसका मन बहले। खाली समय में वह चिलम लेकर किसी चौपाल पर गप्प उड़ाता है। एक दूसरे की बुराई करना,

दूसरों के घरों की आलोचना करना, यही ग्रामीणों का काम हो गया है। इसका फल यह होता है कि एक दूसरे के प्रति ईर्षा, द्वेष, और जलन के भाव उत्पन्न होते हैं। पटवारी, मुखिया तथा कुछ अन्य व्यक्ति, जिनका मुकदमें बाजी तथा लड़ाई झगड़े से लाभ होता है इसका लाभ उठाते हैं। यह तभी बन्द हो सकता है कि जब घरों को अधिक आकर्षक बनाया जावे। घरों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए गृहवाटिका-आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। फूलों की क्यारियों में उत्पन्न होने वाले फूल और तरकारी उसके लिए एक आकर्षण की वस्तु होंगी। फूलों से घर को अधिक आकर्षक बनाया जा सकता है। लेकिन जहाँ इसके लिए हमें पुष्प वाटिका आन्दोलन को चलाना होगा वहाँ हमें गृहस्वामिनी को भी घरों को अधिक सुन्दर बनाने की शिक्षा देनी होगी। अभी तक ग्राम सुधार कार्य कर्ताओं ने गृह स्वामिनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। जब तक गांवों में स्त्रियाँ ग्रामीण जीवन को मधुर, और घरों को अधिक आकर्षक बनाने का काम अपने हाथ मे नहीं ले लेतीं तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी।

यह तो स्वास्थ्य और सफाई के परिच्छेद में ही लिखा जा चुका है कि गृह-वाटिका से दो लाभ होंगे एक तो उससे फूल और तरकारी मिलेगा दूसरे घर के काम में लाया हुआ पानी जो कि नाली न होने के करण सड़ता रहता है और गन्दगी उत्पन्न करता है उसका उपयोग हो सकेगा। घर के काम में आने वाले पानी की समस्या को तो (Sokage Pits) पानी सोखने वाले गड्ढों के द्वारा भी हल किया जा मकता है। यदि सड़ने वाले पानी की समस्या को सोकेज पिट्स (पानी सोखने वाले गड्ढों) से हल किया जावे तो भी गृह वाटिका तो हर एक

घर में होनी ही चाहिए। प्रकृति ने फूल जैसी सुन्दर चीज़ उत्पन्न की है गाँवों में वह आसानी से उत्पन्न हो सकती है लेकिन हम उसके आनन्द से बञ्चित हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। गाँवों के कुओं के पास इतना अधिक पानी गिरता है कि वहाँ दलदल बन जाता है। उससे केवल यही हानि नहीं होती कि गन्दगी पैदा होती है वरन गन्दा पानी क्रमशः पृथ्वी में पहुँच कर कुयें के पानी से मिलता और उसे दूषित करता है। बहुत से लोग कुओं पर नहाते और कपड़े साफ करते हैं। गाँव की स्त्रियाँ कुओं से पानी भरती हैं और घरों पर नहाती है। यदि कुओं पर नहाने और कपड़ा साफ करने के लिए पक्का चबूतरा बना दिया जावे और औरतों के नहाने और कपड़ा साफ करने के लिए एक बन्द जगह बना दी जावे तो गाँव की स्त्रियों को बहुत सुविधा हो और उनकी बहुत सी मेहनत बच जावे। कुओं की मन ऊंची उठवा कर उसके चारों ओर ढलवाँ नाली बना दी जावे जो कि सार्वजनिक स्नानगृहों की नाली से मिला दी जावे। अब प्रश्न यह है कि इस पानी को ले कहां जाया जावे। या तो एक एक नाली के द्वारा उस पानी को बस्ती से दूर ले जाकर खेतों अथवा मैदान में छोड़ दिया जावे और यदि यह सम्भव न हो तो कुयें के पास ही केले तथा अन्य ऐसे पौधों को लगा दिया जावे कि जो उस पानी को सोख लें। यदि गाँव के लोग या पंचायत इधर ध्यान दें तो एक छोटी सी वाटिका लगाई जा सकती है। इससे एक लाभ तो यह होगा कि गन्दगी दूर हो जावेगी, गन्दे पानी का उपयोग वाटिका में हो सकेगा, दूसरे गाँव का आकर्षण बढ़ेगा।

मुकदमेबाज़ी—

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि मुकदमेबाजी का रोग किस भयङ्करता से हमारे गाँव में फैला हुआ है। गाँव में मनोरञ्जन के साधनों का अभाव, ईर्षा, द्वेष, पटवारी, मुखिया इत्याति का षडयंत्र, इसके मुख्य कारण हैं। अभी तक देश के नेताओं ने और सरकार ने इसके अनिष्टकारी आर्थिक दुष्प्रभाव की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि उन्हें देना चाहिए था। सच तो यह है कि ग्रामीणों के पतित अवस्था का यह मुख्य कारण है। हालत यहाँ तक खराब हो गई है कि हर एक गाँव में दो एक चालाक व्यक्ति आपको ऐसे मिलेंगे जिनका काम मुकदमे लड़वाना है। वे मुकदमा लड़वाने वालों के लिए वकील मुख्तार का प्रबन्ध करते हैं, झूठी सच्ची गवाही जुटाते हैं और अदालती दौड़ धूप करते हैं। उनका निर्वाह केवल मुकद्में लड़ने से होता है। यही उनका पेशा है। निर्धन किसान को अदालत के चपरासी से लेकर वकील, तथा अदालत के कर्मचारी तक जिस प्रकार से लूटते हैं वह किसी से छिपा नहीं है। लेखकों ने इस सम्बन्ध में थोड़ी सी खोज की थी उससे यह ज्ञात हुआ कि साधारणतः जितना लगान एक गाँव ज़मीदार को देता है उससे लगभग ड्योढ़ी रक़म प्रतिवर्ष मुकदमेबाजी पर खर्च होती है। लेकिन इतने से हीं मुकद्मेबाजी से होने वाली आर्थिक हानि का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। किसान कितने दिन अदालतों में चक्कर काट कर व्यर्थ खोता है, उन दिनों खेती के काम की जो हानि होती है यदि उनका हिसाब लगाया जावे तो मुकदमेबाजी से होने वाली भयङ्कर आर्थिक हानि का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस घातक मुकद्मेंबाजी को रोकने का उपाय यह है कि गाँव में मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध किए जावें, गाँवों में मुकद्मेंबाजी

के विरुद्ध वातावरण बनाया जावे, और पंचायतें स्थापित करके गाँव में ही झगड़ों को निबटा दिया जावे। किन्तु वर्तमान पंचायत कानून में बहुत दोष है। पंचायतों को अधिक अधिकार देकर उनके संगठन को बदलना पड़ेगा। प्रचार, शिक्षा, तथा सब तरह से गाँवों में मुकदमेबाजी से हमें युद्ध करना होगा। तभी ग्रामीण का इस रोग से छुटकारा हो सकेगा। यह रोग घुन की तरह से गाँवों को खाए जा रहा है।

रेडियो और सिनेमा फिल्म—

गाँवों में मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध करने तथा शिक्षा और प्रचार कार्य करने के लिए रेडियो तथा सिनेमा का अधिक से अधिक उपयोग होना चाहिए। हर एक प्रान्त में आवश्यकतानुसार प्रान्तीय सरकार ब्राड-कास्ट स्टेशन स्थापित करे जो कि केवल गाँवों का प्रोग्राम ब्राडकास्ट करें। साथ ही प्रान्तीय सरकारों को सस्ते रेडियों सेट बनवा कर उनका गाँवों में उपयोग करना चाहिए। संयुक्त प्रान्त में जहाँ जहाँ ट्यूब वैल हैं वहाँ आसानी से बिजली के द्वारा रेडियो से काम लिया जा सकता है। यदि रेडियो के द्वारा गाँवों में सब कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार करना शुरू कर दिया जावे, संसार भर की खबरें किसान को दी जावें उनके लिए मनोरंजन का प्रोग्राम रक्खा जावे, स्वास्थ खेती बारी तथा पशुओं के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी कराई जावे तो गावों का जीवन बहुत कुछ बदल सकता है। ग्राम सुधार कार्य में रेडियो का बहुत बड़ा महत्व है। परन्तु अभी तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ब्राडकास्टिंग स्टेशन्स जिस प्रकार प्रोग्राम ब्राडकास्ट करते हैं वह गांव वालों के मतलब का बिलकुल नहीं होना। रेडियो के अतिरिक्त यदि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय ग्राम-सुधार-विभाग छोटे छोटे ग्राम जीवन सम्बन्धी

फिल्म बनवाले और दो या तीन टाकी मशीनों की सहायता से वे उन फिल्मों को घुमाघुमा कर गांवों में दिखलाने का आयोजन करें तो भी प्रचार और मनोरंजन का साधन उपलब्ध हो सकता है।

गाँवों में रूढ़ि वाद—

जिस प्रकार के वातावरण में भारतीय ग्रामीण जीवन व्यतीत करता है उसमें रहकर यदि वह रूढ़िवादी हो जावे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है वह पुरानी रीतियों को फिर वह चाहे कितनी अनर्थकारी क्यों न हो बिना किसी प्रकार का बिरोध किए मानता चला जाता है। विवाह, मृतक, और जनेऊ संस्कार में, या किसी धार्मिक कृत्य में वह ऋण लेकर भी बिरादरी के लोगों को भोज देना अपना कर्तव्य समझता है। बिरादरी वालों को दावत न देने से उसकी हँसी होगी इसको वह किसी तरह से भी सहन नहीं कर सकता। विवाह में दहेज की प्रथा ने तो और भी ग़जब ढ़ादिया है। प्रत्येक ग्रीमीण यह समझता है कि यदि मैं रस्म को तोड़ूंगा तो नक्कू बनूंगा। यह है भी कुछ हद तक ठीक। यह समस्या तभी हल हो सकती है कि जब गांव के अधिकांश लोंग इन रीतियों को तोड़ें। इस समस्या को हल करने के लिए प्रचार तथा शिक्षा ही एक मात्र उपाय है। पंजाब और संयुक्त प्रांत में रहन सहन सुधार समितियां (Betterliving Societies) इस कार्य को कर रही हैं। जो भी व्यक्ति इन समितियों के सदस्य होते हैं उनको इस बात का प्रण करना पड़ता है कि समिति इन सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों पर जितना व्यय होना निश्चित करेगी उससे अधिक वे व्यय नहीं करेंगे। समिति प्रत्येक धार्मिक तथा सामाजिक कार्य पर कितना व्यय होना चाहिए यह निश्चित

कर देती है। यदि कोई सदस्य इस नियम को तोड़ता है तो उसे जुर्माना देना पड़ता है अब तो प्रान्तीय सरकार दहेज सम्बन्धी कानून बनाने की बात भी सोच रही है। यदि दहेज सम्बन्धी कानून बन गया तो बिवाह पर जो धन व्यर्थ नष्ट किया जाता है। वह बच जावेगा। परन्तु वास्तव में यह समस्या तभी हल हो सकेगी जब कि ग्रामीण इस प्रकार के खर्चे से होने वाली हानि को समझ लें और स्वयं इसको बन्द कर दें।

भाग्यवादी तथा अशिक्षित होने के कारण ग्रामीण जंत्र मंत्र झाड़, फूंक और टोंना टुकड़ा में बहुत विश्वास करता है। कभी कभी तो उसकी इस अज्ञानता के कारण महा अनर्थ हो जाता है। बहुत से ग्रामीण, बीमार होने पर दवा खाकर केवल झाड़ फूंक पर निर्भर रहते है। बच्चों के लालन पालन में भी रूढ़ीवाद और अज्ञानता के कारण बड़ी प्रथायें गाँवों में प्रचलित हो गई हैं। परन्तु यह सब बातें तो केवल शिक्षा तथा प्रचार से ही दूर हो सकती हैं।

गाँवों के जीवन में सरसता और मधुरता लाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि गृहणी को शिक्षित तथा गृह कार्य में दक्ष बनाया जावे। ग्राम सुधार कार्य गाँव की गृहणी की उपेक्षा करके कभी भी सफल नहीं हो सकता। अतएव गांवों की उन्नति के लिए जो भी कार्य किए जावें उनमें गांव की स्त्रियों को न भूलना चाहिए।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

गावों में राजनैतिक जीवन

भारतवर्ष गाँवों का देश है। यहाँ गाँवों की संख्या ७ लाख से ऊपर है। सौ पीछे नब्बे मनुष्य ग्रामों में निवास करते हैं। अतएव भारतवर्ष में राज्य का प्रमुख कर्तव्य गाँवों की उन्नति करना है। परन्तु दुर्भाग्यवश राज्य ने अभी तक गाँवों की जितनी उपेक्षा की उतनी उपेक्षा अन्य किसी देश में सरकार ने नहीं की। परन्तु यहाँ का ग्रामीण भाग्यवादी, अन्धविश्वासी और मृतक का संतोष लेकर अत्याचार और शोषण को सहने के ही लिए मानो पैदा हुआ था। अपनी अनन्त शक्ति का तनिक भी ध्यान न होने के कारण तथा उनमें राजनैतिक चेतना के अभाव के कारण यह सम्भव हो सका। किन्तु जैसे जैसे भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन केवल कुछ पढ़े लिखे तथा धनी व्यक्तियों का न रह कर जन-आन्दोलन का रूप धारण करता गया वैसे वैसे निर्धन ग्रामीण भी अपने शोषकों और अत्याचार करने वालों को पहचानता गया। १६३२ के उपरान्त तो भारतीय किसानों में अभूतपूर्व राजनैतिक चैतन्य उत्पन्न हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो राष्ट्र की सोई हुई शक्ति जाग उठी है। १६३५ के नवीन शासन विधान ने निर्धन ग्रामीण के हाथ में और भी शक्ति दे दी। बड़े बड़े राजा और ताल्लुकेदार, सेठ और साहूकार, वकील और डाक्टर जो कि ग्रामीण से सीधे मुँह बात भी न करते थे वोट के लिए उसके टूटे फूटे छप्पर में बैठे दिखलाई देने लगे। उधर राजनैतिक नेताओं ने जो चुनाव

संबंधी प्रचार किया उससे गांवों में एक अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न हुई। जो लोग कि बराबर यह कहा करते थे कि निर्धन और अशिक्षित किसान को मताधिकार देने से वह उसका ठीक उपयोग न कर सकेगा यह देख कर चकित हो गए कि पूंजी पति और राजाओं की थैलियां निर्धन किसानों को न खरीद सकीं। १९३६ के चुनाव के उपरान्त प्रान्तों में जो सरकारें स्थापित हुई वे गांव वालों की वोटों से स्थापित हुई थीं, अतएव उनको गांवों की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया। परन्तु फिर भी अभी तक अनेक कारणों से गांवों की ओर सरकार का जितना ध्यान होना चाहिए उतना नहीं है। भविष्य में जैसे जैसे गांवों की निर्धन जनसंख्या में अधिकाधिक राजनैतिक चैतन्य उत्पन्न होता जावेगा और वे अपने अधिकारों को समझते जावेंगे वैसे ही वैसे प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों को गांव वालों की सुविधाओं की ओर अधिक ध्यान देना ही पड़ेगा। भारतवर्ष मे वह दिन शीघ्र आने वाला है कि जब कि देश का शासन गांव वालों के दृष्टिकोण से होगा और जितनी जल्दी वह समय आवे वह देश के लिये शुभ है।

अब हम गांवों के वर्तमान शासन पर प्रकाश डालने के उपरान्त यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि वास्तव मे गांवों के शासन मे क्या क्या सुधार होना आवश्यक है।

ग्राम शासन

गाँव के मुख्य कर्मचारी—

ग्राम का शासन गांव के तीन कर्मचारियों द्वारा चलता है। हर एक गांव में निम्नलिखित तीन कर्मचारी होते है। नम्बरदार, पटवारी, और चौकीदार। हर एक गांव में एक मुखिया भी होता

है यद्यपि वह कर्मचारी तो नहीं होता लेकिन पुलिस उनकी सहायता लेती है। नम्बरदार; ज़मींदारों से मालगुज़ारी तथा सिंचाई की रकम वसूल करता है और उसे तहसील में भेज देता है। नम्बरदार का काम अपने गांव में शान्ति का रखना भी है।

बड़े गांवों में एक ही गांव का और छोटे गांवों में दो दो या अधिक का एक पटवारी होता है। वह अपने गांव के किसानों और ज़मींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज़ या रजिस्टर आदि रखता है। जब खेतों में कोई तबदीली हो, कोई खेत या उसका हिस्सा बिक जावे, या खेत का मालिक बदल जाय या मर जाय तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है और मालगुजारी का हिसाब रखता है।

चौकीदार गांव में पहरा देता है और चौकसी करता है। वह प्रति सप्ताह पुलिस में गांव की साप्ताहिक रिपोर्ट देता है। उस सप्ताह में कितने आदमी मरे कितने बच्चे पैदा हुए इसकी सूचना देना चौकीदार का कर्तव्य है। गाँव की चोरी मारपीट तथा अन्य अपराधों की भी वह पुलिस को सूचना देता है।

गाँव के यह तीनों कर्मचारी तहसीलदार के आधीन होते हैं। तहसील का प्रधान कर्मचारी तहसीलदार होता है। वह प्रजा और अपने से ऊपर के अधिकारियों को एक दूसरे के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना देता रहता है। उसका मुख्य काम तहसील की मालगुज़ारी वसूल करना है। वह फौजदारी के मामलों को भी सुनता है। उसे दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटी के भी अधिकार होते हैं उसके नीचे कानूनगो और नायब तहसीलदार आदि कर्मचारी होते हैं जो पटवारियों के काम की देखभाल करते हैं।

इनके अतिरिक्त सिंचाई विभाग, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के शिक्षा तथा स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी भी गांवों के सम्पर्क में आते हैं।

पंचायतें—

प्राचीन समय में गांव का सारा शासन ग्रामीण पंचायत ही करती थीं। प्रत्येक गांव में एक प्रभावशाली पंचायत होती थी उस समय की पंचायत आज कल की सी नाम मात्र की संस्था नहीं थी गांव का सारा शासन उसके द्वारा होता था। पंचायत स्थानीय रक्षा का प्रबन्ध करती थी, दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का निबटारा करती, गांव में शिक्षा स्वास्थ्य तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों को करती थी। भारतवर्ष में पंचायतों के द्वारा ही स्थानीय शासन होता था। पंचायतों का यहाँ इतना विश्वास था कि अब तक "पंच परमेश्वर" की कहावत चली आती है। हिन्दुओं और मुसलमानों के शासन काल में यहां पंचायतें प्रभावशाली रहीं। लेकिन अंग्रेजी शासन काल में इनके अधिकार प्रान्तीय सरकारों ने ले लिए। पुलिस और फौजदारी अदालतें स्थापित करदी गईं। इस कारण यहाँ पंचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। यद्यपि अब भी गांवों में पंचायतें मिलती हैं जो मंदिर, धर्मशाला, बनवाने का कार्य करती हैं किन्तु यह पुरानी प्रभाव शाली पंचायत के अविशेष चिन्ह मात्र हैं।

आज भी राजपूताने के पहाड़ी तथा मरुभूमि प्रदेश में बसे हुए गांवों में पंचायत एक अत्यन्त प्रभावशाली संस्था के रूप में दिखलाई देती है। गांव के तालाब की मरम्मत करवाना, गांव के मुकदमों को तय करना, मंदिर का प्रबंध करना, राज्य से

यदि कोई मुकदमा लड़ना हो तो गांव का प्रतिनिधित्व करना तथा गांव में शिक्षा आदि का प्रबंध करना पंचायत के मुख्य कार्य होते हैं। लेखकों को दक्षिण राजपूताने के गांवों का अनुभव है। गांव की पंचायत गांव के तालाब की मरम्मत के लिए गांवों का अनुभव है। गांव की पंचायत गांव के तालाब की मरम्मत के लिए गांव के हर एक स्त्री पुरुष और लड़के को मिट्टी खोद कर तालाब के बांध पर डालने की आज्ञा देती है। गांव की लड़कियों से अवश्य यह काम नहीं लिया जाता। मंदिर में पूजा के लिए पंचायत हर एक घर पीछे थोड़ा सा घी तेल रुई और कुछ वार्षिक कर लेती है। गांव के जितने मुकदमें होते हैं उसका फैसला पंच लोग करते है और यदि राज्य से गांव का कोई झगड़ा होता है तो पंचायत ही गांव का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन देशी राज्यों ने भी बहुत कुछ अंगरेजी सरकार की तरह पञ्चायतों के अधिकार छीन लिए हैं इसलिए पञ्चायतें प्रभावशून्य संस्थाएं बन गई हैं।

थोड़ा समय हुआ जब सरकार को प्राचीन पंचायतों के गुणों का ज्ञान हुआ अब पुनः पञ्चायतों को नवीन रूप से, स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कानून बनाए गए हैं। और कहीं कहीं सरकार के द्वारा इनकी स्थापना भी करदी गई है। इन पंचायतों में पांच पंच होते हैं कभी-कभी पंचों की संख्या इससे भी अधिक होती है। एक सरपंच होता है। पंचों का निर्वाचन गांव वाले नहीं करते उनको जिलाधीश नामजद करता है। उन्हें छोटे मोटे दीवानी तथा फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार होता है इनमें पेश होने वाले मुकदमों में किसी भी ओर से वकील पैरवी नहीं कर सकता। अन्य खर्च भी कम होता है पंचायत को गांव में शिक्षा,

और आवारा फिर कर नुकसान पहुँचाने वाले मवेशियों के संबंध में भी कुछ अधिकार होते हैं। पचायत साधारण अपराध करने वाले पर कुछ जुर्माना कर सकती हैं, मुकदमा लड़ने वालों से कुछ फीस ले सकती हैं, इन्हें डिस्ट्रिक बोर्ड तथा सरकार से भी कुछ सहायता मिलती है, यही इनकी आमदनी है। आधुनिक पंचायतों के अधिकार पुरानी पंचायतों की अपेक्षा बहुत कम हैं। यह गांव वालों के द्वारा न चुनी जाकर सरकार द्वारा बनाई जाती हैं। यह एक प्रकार की सरकारी संस्थाएँ हैं। इनका कार्य सरकारी कर्मचारियों की सहायता से और इनके ही निरीक्षण और नियंत्रण में होता है। इसलिए न तो इन पंचायतों का इतना प्रभाव ही होता है और न गांव के लोगों की वे विश्वासभाजन ही बन सकी हैं।

यदि किसी गांव के निवासी अपने यहाँ पंचायत स्थापित करना चाहें तो उस गांव के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों को ज़िलाधीश के यहां दरखास्त देनी चाहिए। वह इस बात की जांच करावेगा कि यहा पञ्चों का कार्य करने योग्य काफी आदमी मिल सकते हैं या नहीं। यदि इस जाँच का फल अनुकूल हुआ तो जिला-धीश पंचों को नामजद कर देता है और उनमें से एक को सर-पञ्च नियत कर देता है। पंच-सरपंच बनाने तथा उन्हें बरख़ास्त करने का अधिकार ज़िलाधीश को ही होता है। जब पञ्चायत की स्थापना हो जाती है तब यह निश्चित कर दिया जाता है कि सप्ताह में किस किस दिन और किस स्थान पर तथा किस समय पञ्चायत अपना काम किया करेगी।

यदि पञ्चायतों को गांव के स्वास्थ्य, सफाई, रक्षा और मुकद्मों के निबटाने का पूरा अधिकार दिया जावे, प्रान्तीय सरकार पञ्चायत के ज़रिये से ही गांव का शासन करें, तो गांवों

को बहुत लाभ हो सकता है। किन्तु पञ्चायत गांव की विश्वास-पात्र तभी बन सकेगी जब कि सच्चे, ईमानदार, तथा सेवा परायण लोग जिनमें गांव का विश्वास हो पञ्चायत के पञ्च बनाये जावें। पञ्च ऐसे व्यक्ति होने चाहिए कि जिनके लिए गांव वालों की सम्मति हो। लेकिन आज कल जो भी पञ्चायतें गांवो में स्थापित की गई है उनके पञ्च अधिकतर अधिकारियों के खुशामदी लोग होते हैं और वे अधिकारियों के दबाव में रहते हैं।

ज़िला बोर्ड—

देहातों में प्रारम्भिक शिक्षा, और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य संस्थाएं जिला बोर्ड या डिस्ट्रिक बोर्ड कहलाती है। जिला बोर्डों का संगठन म्यूनिस्पैलटियों की ही तरह होता है कहीं कहीं लोकल बोर्ड, ताल्लुका बोर्ड और जिला बोर्ड तीन प्रकार के होते हैं। किन्तु संयुक्तप्रान्त में केवल जिला बोर्ड ही होते हैं।

इन बोर्डों में अधिकतर सदस्य चुने हुए होते हैं किन्तु कहीं कहीं नामजद सदस्य भी काफी होते हैं। संयुक्तप्रान्त में बोर्ड का सभापति चुना हुआ गैर सरकारी होता है। जिला बोर्डों के चुनाव में जिन लोगों को वोट (मत) देने का अधिकार है उनकी सम्पत्तिक योग्यता अथवा शिक्षा सम्बन्धी योग्यता निर्धारित कर दी गई है। होना तो यह चाहिए कि गांवों में रहने वाला प्रत्येक बालिग़ स्त्री पुरुष जिला बोर्डों के चुनाव में भाग लेसके। जिला बोर्ड नीचे लिखे मुख्य कार्य करते हैं।

सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत करवाना, उन पर पेड़ लगवाना तथा उनकी रक्षा करना। प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध

करना। चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना। चेचक या प्लेग का टीका लगाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु चिकित्सालय की व्यवस्था करना बाजार, मेला नुमाइश या कृषि प्रदर्शनी का आयोजन करना। पीने के पानी के प्रबन्ध के लिए तालाब या कुएं खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। कांजी-हौस अर्थात ऐसे स्थान की व्यवस्था करना जहां खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं। घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

बोर्डों की आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है। सरकार वार्षिक लगान या मालगुजारी के साथ प्राय: एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब में वसूल करके बोर्डों को दे देती है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए प्रान्तीय सरकार उन्हें कुछ रक़म देती है। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु चिकित्सा और स्कूलों की फीस कांजी हाऊस की आमदनी, मेले नुमाइशों पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि कर हैं।

इन जिला बोर्डों की देख भाल तथा निरीक्षण कलक्टर करता है। जब वह समझता है कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव ऐसा है जिससे सार्वजनिक हित की हानि होती है। तो वह उस कार्य को रोक दे सकता है या उस प्रस्ताव को अमल में लाए जाने से रोक सकता है। यदि प्रान्तीय सरकार यह समझे कि बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता तो उसे तोड़ सकती है। इस दशा में उसका दूसरा चुनाव होता है। यदि जिला बोर्डों के सदस्य जाति बिरादरी या और दूसरे सम्बन्धों के विचार से न चुने जावें और केवल सच्चे, ईमानदार, तथा

सेवा परायण लोग ही चुने जावें तो ग्रामों का बहुत लाभ हो सकता है।

संयुक्तप्रान्त में म्यूनिस्पैलटियों और डिस्ट्रिक्टबोर्ड से सम्बन्ध रखने वाला एक बिल प्रान्तीय एसेम्बली में उपस्थित है और आशा है कि वह शीघ्र ही कानून बन जावेगा। इस नवीन कानून के अनुसार कलक्टरों का जो जिला बोर्डों पर प्रभाव है वह हट जावेगा, बोर्डों के अधिकार बढ़ जावेंगे और जहां हिन्दू मुसलमान चाहें संयुक्त निर्वाचन की प्रथा प्रचलित हो सकेगी। परन्तु कानून का वास्तविक स्वरूप क्या होगा वह कह सकना कठिन है।

नवीन शासन विधान के अनुसार प्रान्तीय सरकार जनता के प्रतिनिधियों की होगी। जिस दल का प्रान्तीय व्यवस्था पिका सभाओं में बहुमत होगा वही मंत्रीमंडल बनावेगा। साथ ही नवीन शासन विधान के अनुसार ग्रामीण प्रतिनिधियों का व्यवस्थापिका सभाओं में अत्यधिक बहुमत है। अतएव अब वहीं मंत्रीमंडल सफलता पूर्वक काम कर सकेगा कि जिसको गांवों के प्रतिनिधियों का विश्वास प्राप्त हो। यदि गांवों के रहने वाले ऐसे लोगों को चुनकर भेजें कि जो केवल गांव वालों से वोट लेने के ही लिए न जाया करें वरन गांव वालों के हित के कार्यों को करने का बचन दें तो गांवो की दशा सुधर सकती है।

आज जो प्रान्तीय सरकारें गांव वालों विशेषकर किसानो के हितों की रक्षा करने का प्रयत्न कर रही है, उनके लाभ के कानून, ग्रामीण ऋण सम्बन्धी कानून बनाने का जो प्रयत्न किया जा रहा है और कहीं कहीं यह कानून बन भी गए है वह केवल इस कारण कि प्रान्तीय मंत्रि- मंडल किसानों की वोटो पर निर्भर हैं।

यदि अभी तक जितना कार्य गांव वालों के हित का होना चाहिए था उतना नहीं हो सका है तो उसका यही कारण है कि थोड़े वहुत लोग व्यवस्थापिका सभाओं में अब भी पहुँच गए हैं जो कि किसानों के लाभ के कार्यों में अड़ंगा डालते हैं।

यदि भविष्य में किसान में यथेष्ट राजनैतिक जागृत उत्पन्न हो जावे वह अपने स्वार्थों का विरोध करने वालों को पहचान सके तो फिर किसी भी मंत्रिमंडल के लिए उनकी अवहेलना करना असम्भव हो जावेगा। अभी तक किसान और निर्धन ग्रामीण यह भली भाँति नहीं समझ पाए हैं कि उनका शोषण करने वाले ही लोग उनके नेता बन कर उनसे वोट मांगते हैं और व्यवस्थापिका सभा में पहुँचकर किसानों और निधन व्यक्तियों के हितों का विरोध करते हैं। जैसे जैसे भारतीय निर्धन ग्रामीण धर्म और सम्प्रदाय के आवरण में अपने शोषकों का वास्तविक स्वरूप देखने लगेगा वैसे ही वैसे देश का शासन सूत्र उसके हाथ में आता जावेगा। आज हिन्दू ज़मींदार हिन्दू हितों की रक्षा के नाम पर और मुस्लिम ज़मींदार इस्लाम की रक्षा के नाम पर अपने धर्मावलम्बियों से वोट मांगता है। किन्तु किसानों के हित का कोई प्रश्न उपस्थित होता है तब यह दोनों मिल जाते हैं और उसका विरोध करते हैं। अतएव जब तक कि मजदूर और किसान यह नहीं समझ लेते कि निर्धनों का एक वर्ग है और उनका शोषण करने वाले जमींदार और पूँजीपतियों का दूसरा गुट्ट है और उन दोनों के स्वार्थ एक दूसरे से भिन्न हैं तब तक वे इन नाम धारी साम्प्रदायी नेताओं के जाल में फँसते रहेंगे। प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा आर्थिक स्वार्थों की विभिन्नता के कारण धीरे धीरे किसान और मजदूर इस बात को समझने लगते हैं। किन्तु इनका सब से बड़ा शोषणकर्ता तो ब्रिटिश

साम्राज्यशाही है। जमींदार और पूंजीपति तो उसके सहायक कल पुर्जे मात्र हैं। अतएव पूर्ण रूप से गांवों की दशा तो तब तक नहीं सुधर सकती कि जब तक देश बिल कुल ही स्वतंत्र न हो जावे। केवल स्वतंत्र भारत में ही गांवों का सुधार पूरी तरह से हो सकता है।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही को भारतवर्ष से हटाने के लिए और देश को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र करने के लिए जो देश को अन्तिम मोर्चा लेना होगा उसका अधिकांश भार किसान और मजदूरों को ही उठाना होगा।

ऊपर दिए हुए विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया कि गांवों की आर्थिक स्थिति के संभालने के लिए यह आवश्यक है कि उनका शोषण बंद हो। यह शोषण पूर्णतः बंद तभी हो सकता है कि जब भारतवर्ष पूर्ण स्वतन्त्र हो जावे। और भारतवर्ष का शासन सूत्र किसानों के हाथ में आ जाय। जब तक कि ग्रामीण जनता में यह भावना उदय नहीं होती तब तक पूर्ण रूप से उनका शोषण बन्द न हो सकेगा।

॥ इति शुभम् ॥